

# ❀ श्री स्वानुभवदर्पण ❀

## [ सटीक ]

( १. दोहा )

निर्मल ध्यान लगाय के, कर्म कलंक जलाय।
भये सिद्ध परमात्मा, वन्दों मन वच काय ॥

जिनने शुक्लध्यान लगा करके मोहनी, ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अन्तराय ये चार घातिया कर्म और वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र ये चार अघातिया कर्मों को भस्म किया, ये कर्म जो कलंक रूप आत्मा से तन्मय थे तिनके दूर होते ही आत्मा शुद्ध सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुआ सो सिद्ध परमात्मा को मैं मन वचन शरीर से बन्दना करता हूँ।

( २. दोहा )

चार घातिया घाति विधि, लिये अनंत चतुष्ट।
तिन जिनवर को प्रणमि के, करों काव्य कुछ सुष्ट ॥

( ५. दोहा )

जो चउगति दुखसे डरे, तो तज सब परभाव।
कर शुद्धात्म चिंतवन, शिव सुख यही उपाव॥

हे जीव ! जो तू नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्यगति और देवगति के जन्म मरण दुःखों से डरता है तो समस्त परभाव ( उपाधिक भाव ) छोड़दे और कर्म कलंक रहित शुद्ध आत्म-स्वरूप का चिंतवन कर। यही मोक्ष-सुख मिलने का उपाय है।

( ६. दोहा )

त्रिविध आत्मा जानके, तज वहिरात्म भाव।
अन्तरात्मा होयकर, परमात्मा को ध्याव॥

वहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा ऐसे तीन प्रकार के आत्मा हैं। तिनको जान करके बहिरात्मापन छोड़कर अन्तरात्मा होके परमात्मा का ध्यान कर।

( ७ दोहा )

मिथ्यादर्शन वश फंसे, अहंकार ममकार।
जिनवर वहिरात्म कहे, सो भ्रमि हैं संसार॥

मिथ्या दर्शन कहिए शरीर जड़ ताहि निज रूप मान अहंकार करना, स्त्री पुत्रादि व घर धनादि में ममकार भाव करना सो मिथ्या श्रद्धान है, ऐसे जीवों को जिनेन्द्र ने वहिरात्मा कहा है। सो वहिरात्मा ससार में भ्रमण करेंगे॥

( ८ दोहा )

निजपर का अनुभव करे, पर तज ध्यावे आप ।
अन्तरात्मा जीव सो, नाश करे त्रय ताप ॥

जो आत्मा निजरूप और पुद्गलादि पररूप का विचार करके शरीरादि परसे ममत्वभाव छोड़े है और ज्ञान-दर्शनमय निज चैतन्य रूप को ध्यावे है, सो जीव अन्तरात्मा अर्थात् आत्मज्ञानी है। जन्म जरा मरण रूप तीन प्रकार का खेद, तिसको दूर करे है, नाश करे है।

( ९ दोहा )

निर्मल निकल जिनेंद्र शिव, सिद्ध विष्णु बुध संत ।
परमात्म के नाम जिन, भाषे एम अनन्त ॥

कर्ममल दूर होने से निर्मल, और पुद्गलीक शरीर छूटने से निकल, और कर्म शत्रुओं को जीतने से जिनेंद्र, जन्म मरण मिट जाने से शिव, अनन्त ज्ञान दर्शनकर सर्वव्यापी होने से विष्णु, बिन सहाय के जानने से बुध, सदा विद्यमान रहने से सन्त, ऐसे गुणों कर परमात्मा के अनेक नाम हैं सो जिनेंद्रदेव ने कहे हैं।

( १० दोहा )

अहंकार भवमें करे, तन धन जन ममकार ।
सो बहिरात्म भव भ्रमे, जिनवर कही उचार ॥

भव जो जन्म तिसमें अहंकार करे है—कहै कि मैं

देव हूं, मैं मनुष्य हूँ, मैं तिर्यंच हूँ, मैं नारकी हूँ, तैसे ही स्त्री पुत्र धन धान्यादि में ममकार करता है कि ये मेरे हैं। यह नहीं विचारता है कि मैं इनसे भिन्न हूं, इनका संयोग कर्मोदय से हुआ है सो अवधि बीते विनश जायगा। सो ऐसे मोही जीवों को जिनेन्द्र ने वहिरात्मा कहा है।

( ११ दोहा )

देहादिक पुद्गलमयी, सो जड हैं पर जान।
ज्ञाता दृष्टा आप तू, चेतन निज पहिचान॥

अब वहिरात्मा–जीवों को गुरु उपदेश करते हैं कि ये देहादिक पुद्गल रूप ( पूरने गलने वाले ) हैं, जड़, ज्ञान, रहित हैं, वर्ण गन्ध रस स्पर्श गुण युक्त हैं और तू चेतन्य आत्मा है, देखने जानने विचारने वाला है, सो अपने रूप की पहिचानकर, परभावों से सम्बन्ध छोड़।

( १२ दोहा )

आप आपने रूपको, जाने सो शिव होइ।
पर में अपनी कल्पना, करे भ्रमे जग सोइ॥

जो आत्मा को आत्मा जानेगा सोही मुक्त होगा। और जो पुद्गलादि द्रव्यों में आत्मा आत्मा मानेगा अर्थात् पर्यायों को अपना रूप मानेगा सो संसार में ही भटकेगा, वारवार जन्म मरण करेगा, मुक्त न होवेगा॥

( १३ दोहा )

बिन इच्छा शुचि तप करे, लखे आप गुण आप ।
निश्चय पावे परम पद, फिर न तपे भव ताप ॥

सांसारिक विषय भोगों की वांछा रहित जो निर्दोष तप करता है और अपने ज्ञान दर्शनादि गुणों को देखता विचारता है सो निश्चय परम पद मोक्ष ताहि प्राप्त करता है। फिर जन्म जरा मरण तपन में नहीं तपता है।

( १४ दोहा )

बन्ध विभाव प्रसादहो, शिव स्वभाव से ज्ञान ।
बन्ध मोक्ष परणाम से, कारण और न आन ॥

बन्ध है सो काम क्रोधादि विभावों से होता है। और मोक्ष है सो परम वीतराग रूप जिन भावों से होय है। इससे विदित हुआ कि बन्ध मोक्ष दोनों के कारण सराग वीतराग परिणाम ही हैं, अन्य कोई कारण नहीं है।

( १५ दोहा )

स्वातमके जाने विना, करे पुण्य बहु दान ।
तदपि भ्रमे संसार में, मुक्त न होय निदान ॥

जो अपने चिदानन्द रूप को नहीं जानता है और बहुत पुण्यदान ही करता है, उन्हीं को मोक्ष देने वाला समझता है, सो मिथ्यादृष्टि संसार ही में भ्रमण (जन्म-मरण) करता है, आखिरकार मोक्ष नहीं पाता है। कारण

कि पुण्य दान से स्वर्गादिक सुख ही मिल सकते हैं, मुक्ति सुख नहीं। सो स्वर्ग भी संसार ही में है ॥

( १६. दोहा )

आत्मज्ञान श्रद्धान ही, दाता शिव ना आन।
द्विविधि धर्म व्यवहार पथ, निश्चय आत्म ज्ञान ॥

आत्मस्वरूप का ज्ञान व दृढ़ता से श्रद्धान ही मुक्ति का देने वाला है, अन्य मिथ्याज्ञान, श्रद्धान, आचरण मुक्ति देने वाले नहीं हैं। और श्रावक धर्म, यती का धर्म भी व्यवहार मार्ग हैं। निश्चय कर आत्म-ज्ञानादि ही मुक्ति-सुख दाता हैं। विना सम्यग्ज्ञान के मुनि का चारित्र व्यव-हार मात्र ही है।

( १७. दोहा )

गुणस्थान वा मार्गणा, उपादेय व्यवहार।
निश्चय आत्मज्ञान ही, परमेष्ठी पद कार ॥

मिथ्यात्व १ सासादन २ मिश्र ३ अव्रतसम्यक्त्व ४ देशव्रत ५ प्रमत्त ६ अप्रमत्त ७ अपूर्वकरण ८ अनि-वृत्यकरण ९ सूक्ष्मलोभ १० उपशांत कषाय ११ क्षीण कषाय १२ सयोग केवली १३ अयोग केवली १४ ये १४ गुणस्थान और चार गति, पंच इंद्रिय, छह काय, पंद्रहयोग, तीन वेद, चार या पच्चीस कषाय, आठ ज्ञान, सात संयम, चार दर्शन, छह लेश्या, दो भव्य अभव्य, छह सम्यक्त्व

( श्रद्धान ) दो संज्ञी असंज्ञी, दो आहारक अनाहारक, ऐसे चौदह मार्गणा, यह सब जीव का स्वरूप व्यवहारनय कर जानना कि मुक्ति दाता है, वास्तव में आत्मज्ञान ही उत्कृष्ट पद मुक्तिका देने वाला है। सम्यग्ज्ञान होने पर ही गुणस्थान मार्गणा का ज्ञान शिव-दायक है। और सम्य-क्त्व के छह भेद किये तहां ऐसा जानना:—असल में तो उपशम क्षयोपशम क्षायक तीन प्रकार ही सम्यक्त्व है और मिथ्यात्व सास्वादन मिश्र श्रद्धान है, सो जिन जीवों के ऐसा ही दृढ़ विश्वास है कि हम सम्यक्त्व श्रद्धानी हैं तिन के दृढ़विश्वास की अपेक्षा इन्हें सम्यक्त्व कहा है, क्योंकि मिथ्यादृष्टी को दृढ़श्रद्धान ( विश्वास ) न होता तो वे उसे छोड सम्यक्त्व श्रद्धानकी खोज अवश्य करते। जो हिंसा में धर्म मानते हैं उनका श्रद्धान भी दृढ़ है, नहीं तो पाप जान छोड़ देते।

( १८ दोहा )

गेह कार्य यद्यपि करें, तदपि स्वानुभव दक्ष।
ध्यावें सदा जिनेशपद, होंय मुक्त प्रत्यक्ष॥

जो सम्यग्दृष्टि यद्यपि घरके कार्य व्यवहार करते हैं परन्तु तो भी आत्मरूप के जानने विचारने में कुशल हैं और जिनेन्द्रदेव के चरणों का ध्यान करते हैं वे प्रगटपने मोक्ष पाते हैं॥

( १६ दोहा )

जिन सुमरो जिन चिंतवो, जिन ध्यावो मन शुद्ध ।
लहो परम पद छ्णक में, होकर के प्रतिबुद्ध ॥

जिनेन्द्र देवके गुणों का स्मरण करो कि कौन गुण कब २ जिनेंद्र के होते हैं और तिन्हों के गुणों का चिंतवन करो कि ये गुण कैसे २ प्रगट होते हैं और जिनेन्द्रदेवका ध्यान करो शुद्ध मन से अर्थात् अभिरुचि से, तो शीघ्र ही प्रतिबुद्ध ( समभदार ) हो करके परम पद जो मोक्ष सो प्राप्त करो।

( २०. दोहा )

जिनवर अरु शुद्धात्ममें, किंचित् भेद न जान ।
येही कारण मोक्ष के, ध्यावो श्रद्धा ठान ॥

अरिहन्त सकल परमात्मा में और शुद्ध आत्मा जो परमात्मा तिसमें कुछ भी अन्तर नहीं है। जैसे सिद्ध निकल परमात्मा शरीर रहित हैं तैसे ही अरिहन्त सकल परमात्मा शरीर सहित हैं। दोनों के गुणों मे कुछ भी अन्तर नहीं, केवल आयुकर्म पूर्ण भये शरीर छोडना ही शेष है, शेष गुण सिद्ध-तुल्य हैं। इससे ये दोनों ही मोक्ष के कारण हैं। तिनको श्रद्धान पूर्वक ध्यावो।

( २१ दोहा )

जो जिनसो आतम लखो, निश्चय भेद न रंच ।
यही सार सिद्धान्त का, छोडो सर्व प्रपंच ॥

जो जिनेन्द्र देव सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं सो शक्ति अपेक्षा अन्य आत्मा हैं, निश्चय नयकर रंचमात्र भेद नहीं है, सिद्धान्त का यही सार है, और सर्व कथन जो प्रपंच मात्र है सो छोडो। व्यक्त अपेक्षा कर्मों से शक्ति रुकी है तिन कर्मों के नाश का उद्यम करो।

( २२. दोहा )

आतम परमातम विर्षे, शक्ति व्यक्त गुण भेद।
नातर उभय समान हैं, कर निश्चय तज खेद ॥

आत्मा में शक्ति अपेक्षा केवल ज्ञानादि गुण प्रगट होने की शक्ति है परन्तु वर्त्तमान दशा में पूर्वोक्त गुण व्यक्त अर्थात् प्रगट नहीं हैं और सकल व निकल परमात्मा अर्हन्त सिद्ध में ये गुण व्यक्त अर्थात् प्रगट हैं। यही दोनों में भेद है, नहीं तो दोनों समान हैं। ऐसा निश्चय करो और व्यर्थ भ्रम में पड़ खेद मत करो, प्रयत्न करो और खेद छोड़ो।

( २३ दोहा )

अगणित शुद्ध प्रदेशयुत, लोकाकाश प्रमाण।
सो शुद्धातम अनुभवो, ध्यावो हो कल्याण ॥

असंख्याते निर्मल प्रदेश सहित शक्ति अपेक्षा लोक प्रमाण है, उस शुद्ध आत्मा का विचार पूर्वक खोज करो। उसका ध्यान करने से तुम्हारा भला होयगा।

( २४ दोहा )

निश्चय लोक प्रमाण है, तनु प्रमाण व्यवहार ।
ऐसे आतम अनुभवे, सो पावे भवपार ॥

आत्मा निश्चय नयकर शक्ति अपेक्षा लोक प्रमाण है और व्यवहार नयकर व्यक्तपने देह प्रमाण रहता है। इस प्रकार जो आत्मा का चिंतवन करता है सो अवसर पाय शक्ति प्रगट कर संसार से पार ( मुक्त ) होता है।

( २५ दोहा )

चौरासी लख योनि में, भ्रम्यो सुकाल अनन्त ।
सम्यक् रत्नत्रय विना, लिया न भवका अन्त ॥

पृथ्वी काय सातलाख, जलकाय सातलाख, अग्नि काय सातलाख, पवनकाय सातलाख, नित्य निगोद वनस्पति काय सातलाख, इतर निगोद वनस्पतिकाय सातलाख, प्रत्येक वनस्पतिकाय दस लाख, दो इन्द्री दो लाख, तेइंद्री दो लाख, चौइन्द्री दो लाख, तिर्यंच पंचेंद्री चारलाख, ऐसे बासठ लाख तिर्यंचयोनि, और देव चार लाख, नारकी चार लाख, मनुष्य चौदह लाख, सर्व चौरासीलाख योनि में जन्म मरण करते २ अनन्तकाल भटका परन्तु सत्यज्ञान श्रद्धान आचरणरूप सम्यक् रत्नत्रय विना जन्म मरण रूप भवका अन्त न पाया।

( २६. दोहा )

शुद्धातम हो शिव चहै, तो कर अनुभव आप ।
स्वात्म जाने होयगा—मुक्त मिटे सन्ताप ॥

हे जीव ! जो तू निर्मल सिद्धपद को चाहता है तो अपने स्वरूप का विचार कर कि तू कैसी शक्ति वाला है और किन कारण से व्यर्थ कष्ट भोगता है । जब तू निज स्वरूप को जानेगा और अपनी शक्ति सम्हालेगा तब तुरंत कर्मकाट मुक्त होगा और संताप मिटेगा ।

( २७ दोहा )

जब तक आतम ज्ञान ना, मिथ्या क्रिया कलाप ।
भटको तीनों लोक में, शिव सुख लहो न आप ॥

हे जीव ! जब तक तुझे अपने रूप का ज्ञान नहीं, अपनी शक्ति की सम्हाल नहीं, तब तक तेरे सर्व क्रिया-कलाप मिथ्या हैं । कितना ही जप तप संयम कर, व्यर्थ है । तू तीनों लोक में भटकता फिर परन्तु कहीं छुटकारा नहीं पावेगा अर्थात् मुक्त नहीं होगा । इसी से स्वाधीन सुख भी नहीं मिलेगा ।

( २८ दोहा )

ध्यावन योग्य त्रिलोकमे. जिनसो आतम जान ।
निश्चय नय जिनवर कहैं, यामे भ्रांति न ठान ॥

हे जीव ! ऊर्ध्व अधः मध्य तीनों लोक में ध्यान करने योग्य विचारने योग्य जिनेन्द्र हैं। तैसे ही आत्मा है; कारण कि जिनेन्द्र भी चैतन्य आत्मा ही सर्व गुण पूर्ण परमात्मा हुए हैं। यह शक्ति आत्मा में ही है धातु पाषाणादि में जिनेन्द्र होने की शक्ति कदापि नहीं है। निश्चय नयकर जिनेन्द्र ने स्वगुण विचार ही मोक्ष का द्वार कहा है, इसमें कुछ भी भ्रांति नहीं है।

( २९. दोहा )

व्रत तप संयम मूल गुण, मूढ कहैं शिव हेतु।
पर स्वातम अनुभव विना, पचे न शिवपद लेतु॥

हिंसा चोरी असत्य कुशील परिग्रह इन पंच-पापों का कुछ२ त्याग सो पंच अणुव्रत और दिग्व्रत देशव्रत अनर्थदण्ड त्याग ये तीन गुणव्रत हैं। और सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग-परिमाण, अतिथि-संविभाग ये चार शिक्षाव्रत हैं, ऐसे बारह व्रत। और अनशन १ ऊनोदर २ व्रतपरिसंख्या ३ रसपरित्याग ४ विविक्तशैयासन ५ कायक्लेश ये ६ बाह्यतप और प्रायश्चित्त १ विनय २ वैयावृत्य ३ स्वाध्याय ४ व्युत्सर्ग, ५ ध्यान ६ यह छह प्रकार अन्तरंग तप, ऐसे बारह प्रकार तप और पंच इन्द्रिय, छठवें मनका निरोध सो ६ प्रकार इन्द्रिय संयम, और छः काय के स्थावर जंगम जीवों की रक्षा सो प्राण-संयम और ऊपर

कहे पंच पापों का सर्वथा त्याग सो पच महाव्रत और ईर्या समिति १ भाषा समिति २ एषणासमिति ३ आदान—निक्षेपणा समिति ४ प्रतिस्थापना समिति ५ ऐसे ५ प्रकार समिति और पांचों इन्द्रियों को विषयों से रोककर निज वशकरना और सामायिक १ वन्दना २ स्तवन ३ प्रति-क्रमण ४ प्रत्याख्यान ५, कायोत्सर्ग ६ ये ६ आवश्यक कर्म, और भूमिशयन, स्नान त्याग, केशलुंच, वस्त्रत्याग, दन्तवनत्याग, खड़े पाणिपात्र आहार, लघु एक बार आहार. ये अट्ठाईस मूलगुण सो व्यवहार शुद्धता को हैं, सो आत्म ज्ञानी को मुक्ति के कारण हैं परन्तु जो आत्म-ज्ञान शून्य केवल इनही को मोक्ष के हेतु ( कारण ) मानते जानते हैं सो मूर्ख हैं। आत्मज्ञान विना नाना प्रकार क्रियाकलाप कर व्यर्थ पचै हैं परन्तु मोक्ष नहीं पावै हैं।

( ३० दोहा )

जो शुद्धात्म अनुभवे, व्रत संयम संयुक्त।
कहें जिनेश्वर जीव सो, निश्चय पावे मुक्त॥

जो जीव शुद्धात्म जो कर्ममल रहित आत्मा को विचारे चितवन करे है, सो निश्चय मोक्ष पावे है—ऐसे जिनेन्द्र कहते हैं।

( ३१. दोहा )

लहै पुण्य से स्वर्ग सुख, नर्क पड़े कर पाप।

पुण्य पाप तज आप में, रमें लहै शिव आप ॥

जो जीव भव-सुख की बांछा कर पुण्य करता है सो स्वर्ग सुख पाता है। और जो पाप कर्म करता है सो नर्क में पड़ता है। और जो पुण्य पाप दोनों को संसारवास का कारण जान त्यागता है और आत्म-स्वरूप में लीन हो रमण करता है, सो आत्मा मोक्षपद पाता है।

( ३२ दोहा )

व्रत तप संयम शील जिय, शिव कारण व्यवहार।
निश्चय कारण मोक्ष को, आतम अनुभव सार ॥

हे जीव! पूर्वोक्त व्रत तप संयम और शील ये व्यवहार नयकर मोक्ष के कारण कहे हैं परन्तु निश्चय नयकर आत्मा का अनुभव (जानना) ही मोक्ष का कारण है।

( ३३ दोहा )

परख ग्रहे निज भाव को, त्याग करे पर भाव।
सो शिव पावे जिन कहें, वृथा कुअन्य उपाव ॥

हे जीव! जो स्वपर भावों का अनुभव कर निज भाव को परीक्षा कर ग्रहण करै और पर भावों को छोड़ै है, जिनेन्द्र ने ऐसा कहा है कि वही मोक्ष पावे है। वृथा नाना प्रकार कुतर्क विचार रूप उपायवाला दूसरा नहीं पाता है।

( ३४ दोहा )

सप्त तत्त्व षट द्रव्य नव, पदार्थ पंच हैं काय।
सो यथार्थ व्यवहार युत, ठीक करो मन लाय ॥

जीव अजीव आश्रव बन्ध सम्वर निर्जरा मोक्ष ये सात तत्त्व और इन्हीं में पुण्य पाप दो मिलाने से नव पदार्थ और जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल ये छः द्रव्य, इनमें से काल को छोड शेष पांचों काय हैं। इनको निश्चय व्यवहार दोनों नयकर भली भांति मन लगाय ठीक करो अर्थात् निर्णय करो।

( ३५ दोहा )

एक सचेतन जीव सब, और अचेतन जान।
सो चेतन ध्यावो सदा, लहो तुरत शिव थान ॥

इन सब तत्त्व पदार्थ द्रव्य काय में से एक जीवतत्त्व जीवपदार्थ जीवद्रव्य जीव अस्तिकाय तो चेतना सहित हैं शेष और सब अचैतन्य-जड़ हैं। इससे चैतन्य जीव ही उपादेय है, उसी को ध्यावो ( विचारो ) तो शीघ्र मोक्ष पावोगे।

( ३६ दोहा )

जो शुद्धात्म अनुभवे, त्याग उपाधिक भाव।
शीघ्र मुक्ति पद सो लहै, यों जिनवर दर्शाव ॥

हे जीव ! जो कर्म कलंकसे भिन्न शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है और काम क्रोध छल लोभ मद मोहादिक भावों को उपाधिक भाव जान छोड़ता है सो शीघ्र ही मुक्ति पाता है । ऐसा जिनेन्द्र ने दिखाया है ।

( ३७ दोहा )

जाने जीव अजीव जो, भेद विज्ञान विचार ।
कहो कहत जिन मुनि सदा, सो पावे भवपार ॥

हे जीव ! जो चैतन्य आत्मा को ज्ञानदर्शनादि गुण युक्त, और वर्ण गंध रस स्पर्शादि गुणयुक्त शरीरादि अजीव पदार्थों को भेद विज्ञान के द्वारा विचारता–जानता है, सो ही भव जो ससार तिसके पार होता है–ऐसा जिनेन्द्र ने वा आचार्यों ने कहा है । और ऐसे ही सदैव कहते हैं ।

( ३८ दोहा )

चेतन ही सर्वज्ञ है, अन्य अजीव न कोइ ।
कहा कहत जिन मुनि यही, निश्चय जानो सोइ ॥

हे जीव ! चैतन्य आत्मा ही सर्वज्ञ है । अन्य शरीरादि जड़ पदार्थ सर्वज्ञ नहीं हो सकते हैं, ऐसा अरिहंत व आचार्य ने कहा है और ऐसा ही सदा कहते हैं, ऐसा निश्चय जानो ।

( ३९ दोहा )

केहि साधों अर्चों ठगों, करो वैर वा प्रीत ।
प्रगट गुप्त सब ठां लखों, सम गुण चेतन मीत ॥

मैं किसका साधन करूं, किसका पूजन करूं, किसको ठगूं और किससे वैर व प्रीति करूं प्रगटपने अरिहंतादि वा गुप्तपने सामान्य जीव सब ही ज्ञानदर्शन चेतना गुण के धारक ही सर्वत्र दीखते हैं। अथवा खुले स्थानों में, उजाले में, छिपे स्थानों में, अन्धकार में जहां २ जीव हैं सब ज्ञानादि गुण के धारक हैं। इससे हे मित्र! किसके साथ ऊपर लिखा व्यवहार किया जावे?

( ४० दोहा )

तब तक भ्रमे कुतीर्थ जिय, करे धूर्तता ढग।
जब तक सुगुरु मिले नहीं, पड़ो कुगुरु के संग॥

यह आत्मा तब तक ही कुतीर्थों में भटकता फिरता है और छल कपट के ढंग बनाता है, जब तक सुगुरु से भेट नहीं हुई, कुगुरु के संग में पड़ा है।

( ४१ दोहा )

तीर्थ दिवालय देव ना, देह दिवालय देव।
जिन वाणी गुरु यों कहो, निश्चय जानो एव॥

हे जीव! निर्वाण क्षेत्रादि तीर्थ और देवालय (मंदिर) में देव कहिए अरहंतादि पूज्य पुरुष नहीं हैं। शरीर रूप मंदिर में आत्मा पूज्य देव है; कारण कि आत्मा ज्ञानादि गुण का धारक है, मुक्त होने की शक्ति रखता है और

प्रतिमा जड़ है, ज्ञानादि गुण रहित है, उपदेशादि देने समर्थ नहीं है। ऐसा जिनवाणी और गुरु कहते हैं—ऐसा निश्चय जानो।

( ४२. दोहा )

तन मन्दिर में जीव जिन, मंदिर मूर्ति न देव।
सिद्ध बने भिक्षहि भ्रमे, सन्मुख हांसी एव॥

शरीर रूप जिन मन्दिर मे आत्मा रूप जिन देव हैं। और धातु पाषाणकी मूर्ति जिनदेव नहीं है, न प्रतिमा का मन्दिर जिन मन्दिर है। जैसे सिद्ध बने और भीख मांग पेट पाले तो यह मुंह पर हास्य कराना है। तैसे ही जड़ पदार्थों को चैतन्य पूजे तो हास्य कराना हैं।

( ४३. दोहा )

मूढ़ दिवालय देव ना, मूर्ति चित्र ना देव।
तन मंदिर में देव जिय, ज्ञानी जाने भेव॥

हे मूर्ख! देवालय में देव नहीं हैं। मूर्ति है, चित्र हैं सो देव नहीं हैं, न हो सकते हैं। शरीर रूप मन्दिर में आत्मारूप देव है सोही पूज्य है। इसका भेद ज्ञानी ही जानते हैं, अज्ञानी नहीं जानते हैं।

( ४४. दोहा )

तीर्थ दिवालय देव जिन, यों भाषें सब मूढ़।
तन मंदिर जिन देव जिय, ज्ञानी जाने गूढ़॥

निर्वाण क्षेत्रादि तीर्थों में व मन्दिरों में जो मूर्त्तियां हैं उनको सर्व मूर्ख देव कहते हैं कि ये अमुक २ देव हैं। परन्तु शरीररूप मन्दिर में जो आत्मारूप देव विराजमान है—यह गूढ भेद ज्ञानी हैं सो ही जानते हैं। कारण कि मन्दिरों में जो मूर्त्तियां रखी गई हैं, उनसे यह लाभ है कि उनको देख आसन की दृढता व वीतराग अवस्था का चित्र चित्त में खिचता है। इसलिए उन्हें झाड पोंछ धोय मांज सुन्दर रखना कहा है। यह गूढ रहस्य ज्ञानवान ही जानते हैं।

( ४५ दोहा )

जन्म मरण रुज से डरे, धर्म महौषधि पीव।
अविनाशी तन ज्ञानमय, पाय सुखी हो जीव॥

हे जीव! जो तू जन्म मरण रोग से भय खाता है तो धर्मरूप महा औषधि पी, जिससे ज्ञानमय ऐसा अविनाशी देह पावे कि जिसका कभी भी नाश न होवे और जिसको पाय सदा सुखी रहै।

( ४६ दोहा )

शास्त्र पढ़ें बांचें बसें—मठ में लुंचें केश।
पिछी कमंडल के रखें, ज्ञान न तो वृष लेश॥

शास्त्रों को पढ़ने से, बांचने से, मठों में बसने से, केशलुंच करने से, पिछी कमंडल रखने से क्या? यदि

हृदय में आत्मज्ञान नहीं है तो उपरोक्त कार्यों से रंचमात्र धर्म न जानना।

( ४७. दोहा )

राग द्वेष परिग्रह तजे, करे स्वपर पहिचान।
तो उपरोक्त क्रिया करे, हो निश्चय निर्वाण॥

हे जीव! जो राग द्वेष उपाधिक भाव और परिग्रह छोड़े, आत्म अनात्म की पहिचान करे तो पीछी कमंडल रखना, शास्त्र पढ़ना आदि ऊपर कही क्रिया करने से निस्सन्देह जीव मुक्त होता है।

( ४८ दोहा )

आयु गले मन ना गले, इच्छाशा न गलन्त।
तृष्णा मोह सदा बढ़े, यासे भव भटकन्त॥

हे जीव! दिन पर दिन आयु घटती जाती है; परंतु मन की उमंग नहीं घटती है, प्रत्येक वस्तु की इच्छा और तृष्णा तथा प्रीति बढ़ती ही जाती है। इसी से संसार में बार २ जन्म धरने को चारों गति में भ्रमण करता है।

( ४९ दोहा )

ज्यों मन विषयों में रमे, त्यों हो आत्म लीन।
छण में शिव सम्पति वरे, क्यों भव भ्रमे नवीन॥

हे जीव! जैसे मन पंच इन्द्रियों के विषयों में रमता

है तैसे ही आत्म स्वरूप के विचार में रमे तो क्षण मात्र में मुक्ति लक्ष्मी प्राप्त होवे, और फिर नवीन २ भव धरने को क्यों भटकना पड़े।

( ५० दोहा )

मल घट सम अति मलिन तन, निर्मल आत्म हंस।
कर ऐसा श्रद्धान तू, नशे कर्म का वंश॥

हे जीव! जैसे मैले से बना हुआ घड़ा और मल से ही भरा महा मलिन होता है, तैसे ही यह शरीर रजवीर्य से बना है। रज से रक्त मांस मेद और वीर्य से हाड़, नशें वसा वीर्य बनता है, और मल-मूत्र खखार रहंट, ठेंठ कीचड़, पसेव आदि से भरा महा मलिन है, तिसमें जो आत्मा कैद है अत्यन्त निर्मल है, ज्ञानादि गुणों कर युक्त है। तू ऐसा निश्चय श्रद्धान कर तो कर्मों का वंश मिटे और मोक्ष पावे।

( ५१ दोहा )

व्यवहारक धन्धे फंसे, बहुधा जग के जीव।
आत्म हित की सुधि नहीं, यासे भ्रमत सदीव॥

हे जीव! लेन देन, सेवा चाकरी, पशु पालन, खेती, लिखा पढी, शस्त्र विद्या, हस्तकला आदि अनेक व्यवहारक धन्धे हैं। तिनही में जीव बहुत करके फंसे रहते हैं। कोई

पेट के, लक्ष्मी के दास बने हैं, कोई कुविसन में रत हैं। ऐसी संसार के जीवों की दशा है। आत्म-हित की तनिक भी सुधि नहीं है इसी से बराबर जन्म मरण होता ही रहता है, सदा भव भ्रमण करता है।

( ५२. दोहा )

यद्यपि शास्त्र पढ़ें कुधी, तदपि मूढ़ शिरताज।
चेत हिताहित का नहीं, लहैं न शिवपुर राज॥

हे जीव! बहुत से कुबुद्धि यद्यपि अनेक शास्त्र पढ़ते हैं, कोई २ सुनते हैं परन्तु तो भी मूर्खों के शिरोमणि ही रहते हैं, कारण जिनको अपने हित अनहित का विचार नहीं है सो मोक्ष सुख नहीं पा सकते हैं।

( ५३ दोहा )

इन्द्रिन से मन भिन्न कर, मत बहु पूछै और।
रागादिक फैलाव तज, आप लाभ हो दौर॥

हे जीव! इन्द्रियों के मेल से मन को भिन्न कर। ये इंद्रियाँ मन को अपने अपने विषयों में रमाती हैं और बहुत पूछताछ कुछ न कर केवल इतना मान कि रागद्वेष मोह को बढाना छोड़ अर्थात् घटाओ तो अपना हित दौड़ कर होवेगा अर्थात् सहज ही होगा।

( ५४. दोहा )

जीव अन्य तन अन्य है, अन्य सकल व्यवहार।

तज पर पुद्गल जीव ग्रहु, तो पावे भवपार ॥

हे आत्मन्! जीव अन्य है और सम्पूर्ण व्यवहार क्रिया भी अन्य है। इससे पुद्गल को पर रूप जान छोड़ो और जीव को निज रूप जान ग्रहण करो तो जन्म मरन से छूटोगे।

( ५५ दोहा )

जो ना जाने जीव क्या, जो न कहै है जीव।
सो नास्तिक भव भ्रमेंगे, जिनवर कहत सदीव ॥

जो मूर्ख यह नहीं जानते हैं कि जीव क्या है। अथवा जो कहते हैं कि जीव है ही नहीं सो नास्तिक, न मानने वाले सदा संसार में भटकेंगे—ऐसा सदा से जिनेन्द्र कहते हैं।

( ५६ दोहा )

रत्नदीप रवि दूध दधि, घृत पत्थर अरु हेम।
रजत स्फटिक अग्नि नव, उदाहरण जिए एम ॥

रत्न, दीप, रवि, दूध, दधि, घृत, पत्थर, सुवर्ण, रजत, स्फटिक, अग्नि, ये नव दृष्टांत कर जीव को पहिचानो। यहां दूध, दधि, घृत एक में लेना। इस तरह जानो कि जैसे रत्न में या दीपक में या सूर्य में प्रकाशक शक्ति है तैसे ही आत्मा में देखने जानने की शक्ति है और जैसे

दूध दही में घृत छिपा है पर चिकनाई से जाना जाता है वा पत्थर में अग्नि है सो टांकी लगाने से जानी जाती है। तैसे ही शरीर में आत्मा है सो देखन जानन क्रिया से जाना जाता है अथा सुवर्ण चांदी खान से मल सहित निकलती है तिनको शुद्ध करने से जानते हैं। तैसे ही शरीर में जीव है सो उपयोग से जानते हैं। वह जीव स्फटिकसा निर्मल प्रकाशित और अग्निसा कर्म–वन भस्म करने वाला है।

( ५७ दोहा )

देह आत्मा भिन्न इम, ज्यों सुवर्ण आकाश।
पावे केवल ज्ञान जिय, तब निज करे प्रकाश॥

देह और आत्मा भिन्न २ हैं, जैसे सुवर्ण अरु आकाश भिन्न २ हैं। जब जीव केवल ज्ञान को प्रकाश करता है तब प्रगट जाना जाता है।

( ५८ दोहा )

यथा व्योम निर्लेप शुचि, त्यों शुचि आत्म प्रदेश।
पर जड़ अम्बर आत्मा, चेतन है परमेश॥

जैसे आकाश लेप रहित निर्मल शुद्ध है, तैसे ही आत्मा उपाधि रहित शुद्ध है। परन्तु आकाश अचेतन है और आत्मा चैतन्य है, परम ऐश्वर्य युक्त है।

( ५९ दोहा )

घ्राणदृष्टि अन्तर लखे, देह रहित जो जीव ।
फिर न जन्मधर पय पिये, शिवथल रहैं सदीव ॥

जो नाशाग्र दृष्टि लगाकर आत्मध्यान कर शरीर के भीतर शरीर से भिन्न आत्मा को देखते हैं वे फिर २ जन्म धारण कर माता का दूध नहीं पीते हैं अर्थात् मुक्त हो सदा सिद्धालय में रहते हैं ।

( ६० दोहा )

ज्ञानमयी चेतन्यतन, पुद्गलतन जड जान ।
सुत दारादिक मोह तज, शिव त्रियसे रति ठान ॥

हे जीव ! तू चेतन्य है, ज्ञान ही तेरा शरीर है । यह पुद्गलीक शरीर जड़, ज्ञानरहित है । इसलिये तू स्त्री पुत्रादि से ममत्व त्याग और मुक्ति–स्त्री से प्रेम कर ।

( ६१. दोहा )

आप आप अनुभव करे, को फल सो न लहन्त ।
केवल ज्ञान उपाय कर, शिव रमणी विलसन्त ॥

जो जीव आत्मस्वरूप का अनुभव करता है वह कौन-सा फल है जिसको वह न पावे ? कारण कि जब आत्म-अनुभव करने वाला मोक्ष सुख पाता है तो अन्य फल क्या वस्तु है ?

( ६२. दोहा )

जो परभावहि त्यागकर, आत्म भाव लखन्त ।
केवल ज्ञान सरूप हो, सो भव ना भटकन्त ॥

जो जीव काम क्रोधाधिक उपाधिक भावों को छोड कर निज ज्ञानादिक व क्षमादिक भावों को देखता, विचारता है, सो केवलज्ञान युक्त होकर मुक्त होता है, फिर संसार में नहीं भटकता है ।

( ६३. दोहा )

भाग्यवान नर धन्य सो, जिन त्यागे परभाव ।
लोकालोक प्रकाशकः देखा आतम राव ॥

हे जीव ! वह पुरुष धन्य है, भाग्यवान है जिसने क्रोधादिक परभाव त्यागे हैं, और लोक अलोक का प्रकाश करने वाला है और आतम-रूप को जिसने देखा है ।

( ६४ दोहा )

अनागार सागार जो, वास करें निज रूप ।
शीघ्र मुक्ति सुख पावही, यों भापत जिन भूप ॥

अनागार मुनि और सागार श्रावक जो अपने निज रूप में रत रहते हैं सो शीघ्र ही मुक्ति सुख पाते हैं, ऐसा जिनदेव ने कहा है ।

( ६५ दोहा )

विरला जाने तत्त्व को, विरला तत्त्व सुनन्त ।
विरला ध्यावे तत्त्व को, विरला श्रद्धावन्त ॥

थोड़े ही जीव तत्त्वसार को जानते हैं। जीव अजीव आस्रव बन्ध संवर निर्जरा मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। और थोड़े जीव ही तत्त्व सुनते हैं, थोड़े ही जीव तत्त्वों का विचार करते हैं और थोड़े ही जीव तत्त्वार्थ का श्रद्धान करते हैं।

( ६६ दोहा )

पुत्रादिक न कुटुम्ब मम, विषय भोग दुःख खान।
जो ज्ञानी इम चिंतवे, सो छेदे भव थान॥

ये पुत्रादिक कुटुम्ब मेरे नहीं हैं। कर्म संयोग से सराय में पथिकों की भांति कुछ काल को एकत्र हुए हैं और मुक्ति मार्ग मे बाधा डालने वाले हैं। और इन्द्रियों के विषय भोग हैं सो दुःख की खान हैं, इनसे दुःख उत्पन्न होता है। जो बुद्धिमान ऐसा विचार करता है सो भव का स्थान कर्म तिनको काटता है।

( ६७. दोहा )

इन्द्र फनीन्द्र नरेन्द्र ये, जिय न शरण दातार।
आत्म को आत्म शरण, बुधमुनि करत विचार॥

देवों के इन्द्र, भवनवासीन के इन्द्र और मनुष्यों के इन्द्र ( राजा ) ये आत्मा को कोई भी शरण दाता नहीं अर्थात् मरने से नहीं बचा सकते हैं: कारण कि वे सव

आयु बीते आप ही नहीं बच सकते तो औरों को क्या बचावेंगे ? इससे आत्मा को अपना ही शरण है अर्थात् मोक्ष मार्ग में प्रवर्तें तो मोक्ष पावे तब अव्याबाध अविनाशी हो जावे। ऐसा बुद्धिवान मुनि विचार करते हैं, मूर्ख क्या जाने ?

( ६८ दोहा )

जन्म मरण इकला करे, दुख-सुख भोगे एक।
दुर्गति शिव पद एकले, यह दृढ़ करो विवेक ॥

हे जीव ! यह आत्मा एकला ही जन्मे है, एकला ही मरता है, एकला ही दुःख तथा सुख भोगता है, और दुर्गति नरकादि व मोक्षपद एकला ही पावे है। ऐसा निश्चय दृढ़ विचार करो ममता-जाल में न फंसो।

( ६९ दोहा )

जन्म मरण इकला करे, यह लख तज परभाव।
ध्यावो अपने रूप को, शीघ्र बनो शिवराव ॥

हे जीव ! यह आत्मा एकला ही जन्मता है, एकला ही मरता है। यह देख कर परभावों का त्याग कर और अपने रूप का ध्यान कर तो शीघ्र ही मुक्ति का स्वामी सिद्ध बने।

( ७०. दोहा )

पापहि पापरु पुण्य को, पुण्य कहत सब लोइ।

कहे पुण्य को पाप जो, विरला पंडित कोइ ॥

पाप को पाप और पुण्य को पुण्य सब लोग कहते हैं। इसका आशय यह है कि पाप से दुर्गति दुःख होते हैं, और पुण्य से शुभ गति सुख होते हैं, सो ससार रत ऐसे जीवों का विचार है—जो देव मनुष्यों के पराधीन क्षण-भंगुर सुख को ही सांचा सुख मानते हैं। इसीसे पुण्य को पाप कहने वाले कोई विरले ही पंडित जानकार हैं। जिनका ऐसा विचार है कि पुण्य से स्वर्गादि मे जो सुखा-भास होता है उसमें जीव ऐसा भोगान्ध हो जाता है कि फिर चिरकाल एकेन्द्री योनि मे भ्रमण करता है। दुखी मनुष्य तो दुःख से डर के मुक्ति मार्ग का खोज भी करता है परन्तु सुखाभास वाला मुक्ति मार्ग को जहरसा देखता है। इससे पाप की अपेक्षा पुण्य ही अधिक दुःख दाता है। परन्तु ऐसा जानने वाले पण्डित थोड़े ही हैं कि जो पुण्य को दृढ़ बन्धन जान पाप कहते हैं।

( ७१ दोहा )

जैसी बेड़ी लोह की, त्यों सोने की जान।
बुरी भली निश्चय करें, सो न सुधी अज्ञान ॥

जैसे लोह की बेड़ी गमन में बाधा करती है, शीत में ठंडी और गर्मी में गर्म हो दुःख देती है, शरीर में छिदती और निर्बल करती है; तैसे ही सोने की बेड़ी गमन में

बाधा डालती, शीत में ठंडी और गर्मी में गर्म हो कष्ट देती है, शरीर में छिदती और निर्बल करती है वरन् चोर डाकुओं से प्राण लिवाती है। इनमें जो बुरी भली की कल्पना निश्चय करते हैं सो बुद्धिवान नहीं अज्ञान हैं; कारण कि सुवर्ण को बहु मूल्य रूपवान जान भला कहना और लोहे को अल्प मूल्य कुरूप जान बुरा कहना, सो अज्ञानता है। भला तो सुख दाता को और बुरा दुःख दाता को समझना चाहिये। ऐसे ही पुण्य को सोने की बेड़ी और पाप को लोह की बेड़ी जानो, दोनों भव में रोकते हैं।

( ७२. दोहा )

हे जिय जो निर्ग्रंथ मन, तो तू भी निर्ग्रंथ।
रागादिक मल त्याग से, पावेगा शिव पथ॥

हे जीव! जो तेरा मन संसार से उदास वीतराग है, परिग्रह से ममत्व रहित है तो तू निर्ग्रंथ ( परिग्रह रहित ) ही है। राग ( चार प्रकार माया, चार प्रकार लोभ, हास्य रति और स्त्री वेद पुरुष वेद नपुंसक वेद ) आदि कहने से द्वेष ( चार प्रकार क्रोध, चार प्रकार मान अरति शोक भय ग्लानि ) और मोह ( मिथ्यात्त्व, मिश्र मिथ्यात्त्व, सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्त्व ) ये सब अन्तरंग परिग्रह हैं; तिनसे रहित है तब बाह्य परिग्रह कुछ नहीं कर सकते।

विरक्त के सुवर्ण काच दोनों समान हैं, किसी से प्रीति वैर नहीं है। इससे हे जीव! रागादिक के त्याग से तू अवश्य ही मोक्षमार्ग पावेगा।

( ७३ दोहा )

यथा बीज में बड़ प्रगट, बड़ में बीज सुजान।
तथा देह में जीव है, अनुभव से पहिचान॥

हे जीव! जैसे बीज में बड़ प्रगट है, बीज तोड़ने से नहीं दीखता परन्तु बोने से वृक्ष उपज कर प्रत्यक्ष हो जाता है। तैसे ही बड़ में समय पाय फलने पर बीज प्रगट हो जाते हैं। तैसे ही शरीर में आत्मा है। सो ज्ञान दर्शन उपयोग कर चेतना लक्षण से जाना जाता है, शरीर चीरने फाड़ने से दृष्टि में नहीं आता, अनुभव-गम्य है।

( ७४ दोहा )

यथा जीव परमात्मा, तैसा मैं ना अन्य।
यन्त्र मन्त्र से शिव नहीं, यों निश्चय सो धन्य॥

जैसा परमात्मा असंख्यात प्रदेशी चैतन्य लक्षण वाला जीव है, तैसा ही मैं हूँ, अन्य प्रकार नहीं हूँ। यन्त्र से मंत्र से मोक्ष नहीं होती है। जिनको ऐसा दृढ़ श्रद्धान है सो ही धन्य हैं।

( ७५. दोहा )

दो त्रय चार रु पांच नव, सप्त छ पंच रु चार।

गुणयुत सो परमात्मा, इन लक्षण युत सार ॥

जो रागद्वेष रहित दर्शनोपयोग सहित होवे तथा रागद्वेष मोह वर्जित सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरण ( सम्यक्रत्नत्रय ) सहित होवे फिर क्रोध, मान, माया, लोभ चार कषाय रहित, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप चार आराधना सहित होवे। फिर हिंसा मृषा चोरी कुशील परिग्रह पंच पाप रहित और पंच महाव्रत का धारक होवे। फिर हास्य, रति, अरति, शोक, भय, ग्लानि और तीनों वेद, ऐसे नव नौ कषाय रहित और क्षायक दर्शन, क्षायक ज्ञान, क्षायक सम्यक्त्व, क्षायक चारित्र, क्षायक दान, क्षायक-लाभ, क्षायक भोग, क्षायक उपभोग, क्षायक वीर्य का धारक होवे। फिर जूवा, चोरी, मांस, मदिरा, शिकार, वेश्या, परस्त्री सेवन इन सात कुविसनों से रहित और सप्तशील ( तीन गुण व्रत, चार शिक्षा व्रत ) का धारक होवे। षट-काय की हिंसा से रहित और पंचेन्द्रिय, मन को रोकने वाला होवे। पंच परावर्तन से रहित और पंचम गति का जानने वाला होवे। फिर चतुर्गति के जन्म मरण से रहित अनन्त चतुष्टय सहित होवे। ऐसे लक्षण युत आत्मा मो परमात्मा पद पाने का अधिकारी है।

( ७६. दोहा )

दो त्यागी दो गुण सहित, जो आत्म रसलीन।

जिनवर भाषें सो लहै, मुक्ति कर्म कर चीण ॥

राग द्वेष दो का त्यागी, दर्शनोपयोग ज्ञानोपयोग सहित और आत्म रस में मग्न—ऐसा आत्मा कर्मों को चय कर मुक्ति पाता है, ऐसा जिनेन्द्र कहते हैं।

( ७७. दोहा )

तीन रहित त्रय गुण सहित, स्वात्म करे निवास।
सो पावे सुख सास्वता, जिनवर कहत प्रकाश ॥

राग, द्वेष, मोह इन तीन से रहित और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीन कर सहित हैं और आत्म रूप में प्रवृत्ति करते हैं सो ही सास्वता अविनाशी सुख पाते हैं, ऐसा प्रकट कर जिनवाणी कहती है।

( ७८. दोहा )

चार कषाय रहित सहित, अनन्त चतुष्टय सार।
स्वात्म में जो रच रहा, सो पवित्र अविकार ॥

जो क्रोध मान माया लोभ इन चार कषायों से रहित हैं और अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य इन चार कर सहित हैं सो ही सर्व विकार भाव रहित पवित्र हैं।

( ७९ दोहा )

संग-रहित दश सहित दश, लच्चण दश गुण युक्त।
सो ही निश्चय आत्मा, होइ जगति से मुक्त ॥

खेत वाटिका आदि क्षेत्र १, घर दुकानादि वास्तु २, हिरण्य ३, सुवर्ण ४, में रोकड़ और भूषणादि जानो ऐसे ३–४, धन चौपाये ५, धान्य खेत में उपजे अन्नादि ६, दास ( सेवक ) ७, दासी ( लौंडी ) ८, भांड ( बर्तन ) ९, कूप्य ( वस्त्र ) १० यह दश प्रकार बाह्य परिग्रह (संग) से रहित, और उत्तम क्षमा १, उत्तम मार्दव २, उत्तम–आर्जव ३, उत्तम सत्य ४ उत्तम शौच ५ उत्तम संयम ६ उत्तम तप ७ उत्तम त्याग ८ उत्तम आकिंचन्य ९, उत्तम ब्रह्मचर्य १० ये दश लक्षण धर्म सहित सो ही भये १० गुण तिन सहित आत्मा, सो ही निश्चय मुक्त होता है।

( ८०. दोहा )

आत्म दर्शन ज्ञानमय, आत्म चारित्रवान।
आत्म संयम शील तप, आत्म प्रत्याख्यान ॥

देखने, जानने, आचरण करने वाला आत्मा ही है। तैसे ही संयम शील तप और त्याग ( दान ) करने वाला आत्मा ही है, अन्य जड़ पदार्थ नहीं है।

( ८१. दोहा )

जो पहिचाने आप पर, सो निश्चय पर त्याग।
सो ही है संन्यास वर, भाषें जिन बड़ भाग ॥

जो आत्म अनात्म रूप को भले प्रकार जान निज रूप में लीन होता है, सो ही निश्चय नय कर पर जो जड़

शरीरादि. तिनका त्यागी है। सो ही उत्तम संन्यास है। ऐसा भाग्यवान जिनेन्द्र देव ने कहा है।

( ८२ दोहा )

सम्यग्दर्शन है यही, आत्म विमल श्रद्धान।
फिर फिर ध्यावे आत्महि, सो शुचि चारित्र जान॥

हे जीव! आत्म रूप का भले प्रकार जानना श्रद्धान करना सो ही सम्यग्दर्शन है। और वारंवार आत्मस्वरूप का ध्यान करना सो ही शुद्ध स्वरूपाचरण चारित्र है।

( ८३. दोहा )

रत्न-त्रय युत आत्मा, वर तीर्थ शिव हेतु।
तंत्र मंत्र शिव हेतु ना, एक न मुनि शिव देतु॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र इन तीन रत्न संयुक्त आत्मा है सो वन्दन स्तवन योग्य श्रेष्ठ तीर्थ है। सो ही मोक्ष का कारण है। आप मुक्त होगा और दूसरों को धर्मोपदेश दे मोक्ष मार्ग में लगावेगा। और हे मुनि! तन्त्र मन्त्र मोक्ष के हेतु नहीं हैं, न मोक्ष देते हैं, केवल लोक रिझाने को विडम्बना हैं।

( ८४. दोहा )

जहां जीव तहां सकल गुण, कहत केवली एम।
प्रगट स्वानुभव आपका, निर्मल करो सप्रेम॥

हे जीव ! जहां आत्मा है तहां ही सर्व ज्ञानादि गुण हैं, जड़ पदार्थों में नहीं है, ऐसे केवल ज्ञानी सर्वज्ञ कहते हैं । इससे प्रत्यक्ष अपने आत्मा का अनुभव शुद्ध चित्त लगाकर करो ।

( ८५ दोहा )

एकाकी इन्द्रिय रहित, मन वच तन कर शुद्ध ।
स्वात्म का अनुभव करे, शीघ्र लहे शिव बुद्ध ॥

हे जीव ! एकान्त में इन्द्रियों के विषयों को रोक कर मन, वचन, शरीर को शुद्ध कर अपने आत्मा का विचार करे तो बुद्धिमान शीघ्र ही मोक्ष पावे ।

( ८६. दोहा )

बन्ध मोक्ष की भ्रांति से बन्धे जीव के कर्म ।
सहज रमे निज रूप में, तो पावे शिव शर्म ॥

बन्ध और मोक्ष का यथार्थ स्वरूप विना भासे भ्रांति से जीवों के कर्म बन्ध होता है । और जो निज रूप में रमन करे तो सहज ही मोक्ष सुख पावे ।

( ८७ दोहा )

सम्यग्दृष्टी जीव का, दुर्गति गमन न होइ ।
पूर्व बन्ध वश जाय तो, सम्यक् दोष न कोइ ॥

हे जीव ! सम्यग्दृष्टि आत्मा का नर्क, तिर्यञ्च, कुगतियों

में जन्म नहीं होता है और यदि मिथ्यात्व अवस्था में पहिले ही बन्ध हो चुका होवे और पीछे सम्यक् श्रद्धान हुआ होवे तो दुर्गति गमन होगा सो सम्यक्त्व का दोष नहीं है ।

( ८८ दोहा )

निज स्वरूप में जो रमे, त्याग सर्व व्यवहार ।
सम्यग्दृष्टी होइ सो, शीघ्र लहे भव पार ॥

हे आत्मन् ! जो जीव समस्त कुलाचार व्यवहार धर्मों को त्याग कर आत्मस्वरूप में लीन होता है सो ही सम्यग्दृष्टी होकर शीघ्र जन्म मरण से छूटता है ।

( ८९. दोहा )

अजर अमर गुण का निलय, सम्यक् श्रद्धावान ।
करे न बन्ध नवीन विधि, पूर्व निर्जरा ठान ॥

हे जीव ! जो जीव सम्यक् श्रद्धानी है सो अजर अमर गुणों का घर है। सो कर्मों का नवीन बन्ध नहीं करता है, पूर्व बन्धे कर्मों की निर्जरा ही करता है । भावार्थ—क्रमशः निर्जरा कर मोक्ष पाता है ।

( ९०. दोहा )

जो सम्यक्त्व प्रधान नर, सो ज्ञानी धीमान ।
सो प्रधान त्रैलोक में, सास्वत सुक्ख निधान ॥

हे आत्मन् ! जिन जीवों के सम्यग्दर्शन मुख्य है सो

ही बुद्धिवान सम्यग्ज्ञानी हैं और सो ही ऊर्ध्व अधः मध्य तीनों लोकों में प्रधान हैं। और अविनाशी जो मुक्त सुख तिसके भण्डार हैं।

( ६१. दोहा )

ज्यों जल लिप्त न हो कमल, तैसे सम्यक्वान।
लिप्त न होये कर्म मल, स्वात्म दृढ़ श्रद्धान॥

हे आत्मन्! जैसे कमल जल में रहने पर भी जलसे लिप्त नहीं होता है, तैसे ही सम्यक् श्रद्धानी जीव घर में वास करते हुए भी कर्म मल से लिप्त नहीं होते हैं जिनके कि निज रूप का दृढ़ श्रद्धान है।

( ६२. दोहा )

जो समता रस लीन हो, फिर फिर करताऽभ्यास।
अखिल कर्म सो छय करे, पावे शिवपुर वास॥

हे आत्मन्! जो जीव समता रस में मग्न होकर बारंबार निज स्वरूप का अभ्यास करता है सो समस्त कर्मों को नाश कर मुक्ति नगर का राजा होता है।

( ६३. दोहा )

पुरुषाकार पवित्र अति, देखे आत्म रूप।
सो पवित्र हो शिव लहे, होवे त्रिभुवन भूप॥

हे आत्मन्! जो जीव पुरुष के आकार कर्म मल से रहित सिद्ध स्वरूप के समान शक्ति अपेक्षा निज रूप को

देखता विचारता है, सो समस्त कर्म-कलंक से रहित, पवित्र होकर तीन लोक कर पूज्य सिद्ध होता है।

( ९४ दोहा )

अशुचि देह से भिन्न निज, शुद्ध लखे चिद्रूप।
सो ज्ञाता सब शास्त्र का, पावे सुक्ख अनूप ॥

हे आत्मन्! यह देह रज वीर्य से उपजी हाड, मांस, मेद, मज्जा, रक्त से बनी, नशाजाल चामसे मढ़ी, मल मूत्रादि से भरी महा अशुचि है। इससे भिन्न शुद्ध आत्मा का जो अनुभव करता है वही सर्व शास्त्रों का जानने वाला है। सो ही उपमा रहित मुक्ति सुख पावेगा।

( ९५. दोहा )

स्व पर रूप जाने न जो, नहीं तजे परभाव।
सकल शास्त्र जाने तदपि, मिटे न भव भटकाव ॥

हे आत्मन्! जो अपना रूप और पर रूप भिन्न २ लक्षणों से भिन्न २ नहीं जानता है, काम क्रोधादि उपाधिक भाव अहंकार ममकार पर भावों को नहीं छोड़ता है, सो सम्पूर्ण शास्त्र पढ़ने पर भी जन्म मरण रूप भव भ्रमण से नहीं छूटेगा।

( ९६. दोहा )

तज के विकल्प जाल जो, परम समाधि लहाय।
आत्म सुख अनुभव करे, लहै मोक्ष सुख जाय ॥

हे आत्मन् ! जो नाना प्रकार के संकल्प विकल्प रूप जाल को छोड़ कर उत्कृष्ट समता–भाव कर आत्म-सुख का अनुभव करता है सो अवश्य ही मोक्ष सुख पाता है।

( ९७. दोहा )

जो पिंडस्थ पदस्थ अरु, रूपस्थ रूपातीत।
जिन भाषित ये ध्यान चतु, ध्यावो शुचि कर मीत॥

हे आत्मन् ! जो पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत ये चार प्रकार ध्यान जिनेन्द्र देव ने कहे हैं सो मित्र ! निर्मल चित्त कर ध्यावो।

( ९८ दोहा )

सर्व जीव हैं ज्ञानमय, जाने समता धार।
सो सामायक जिन कहो, प्रगट करे भवपार॥

हे आत्मन् ! जो सर्व जीवों को ज्ञान स्वरूप समता भाव धारण कर जानता है, किसी की विराधना नहीं करता है सो ही जिनेन्द्र ने सामायक कहा है। सो प्रत्यक्ष जन्म मरण से छुटाता है।

( ९९ दोहा )

राग द्वेष जो त्याग कर, धारे समता भाव।
सामायक चारित्र सो, तीर्थपति दर्शाव॥

हे आत्मन् ! जो राग द्वेष छोड़ कर समता भावों को धारण करता है तिसको तीर्थङ्कर देव ने सामायक

चारित्र कहा है।

( १०० दोहा )

हिंसादिन तज निज रमैं, चारित्र दूजो सोइ।
छेदोपस्थापन कहो, शिव पथ कारण लोइ॥

हे आत्मन्! हिंसादिक पापों को छोड़ कर जो अपने स्वरूप में रमन करते हैं सो छेदोपस्थापन नाम दूसरा चारित्र मोक्षमार्ग का कारण लोक में कहा है।

( १०१ दोहा )

तज मिथ्यामल जो धरे, सम्यग्दर्शन शुद्ध।
सो परिहार विशुद्ध है, धरे लहै शिव बुद्ध॥

हे आत्मन्! जो मिथ्यात्वमल को त्याग करके शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण करता है सो ही परिहार विशुद्ध संयम है। इसको धारने वाला बुद्धिमान सिद्ध पद पाता है।

( १०२ दोहा )

सूक्ष्म लोभ के नाश से, शुद्ध होय परिणाम।
सो सूक्ष्म चारित्र है, सास्वतः सुखधाम॥

सूक्ष्म लोभ के नाश से परिणाम शुद्ध होते हैं सो ही सूक्ष्म चारित्र है, अविनाशी सुख का घर है।

( १०३ दोहा )

अरिहंत सिद्धाचार्य अरु, उपाध्याय सब साधु।
ये पद हैं व्यवहार में, निश्चत आत्माराधु॥

हे आत्मन् ! अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु ये पंच पद व्यवहार में ध्यावने योग्य हैं। और निश्चय नय कर आत्मा ही आराधन योग्य है सो उसी को आराध।

( १०४ दोहा )

सो शिव शङ्कर विष्णु सो, रुद्र बुद्ध जिन देव।
ईश्वर ब्रह्मा सिद्ध सो, आत्म नाम गुण भेव ॥

हे आत्मन् ! कर्म जनित उपद्रव के मुक्त होने से सो ही आत्मा शिव है। और जीवों का कल्याण करने से सो ही आत्मा शङ्कर है। और त्रैलोक व्यापी केवल ज्ञानमय होने से वही आत्मा विष्णु है। और शत्रु को नाश करने से वही आत्मा रुद्र है। और सर्व विद्या सम्पन्न होने से वही आत्मा बुद्ध है। और कर्म शत्रुओं के जीतने से वही आत्मा जिनदेव है। और रागादि अठारह दोष रहित छयालीस गुण सहित समवसरणादि विभूति युक्त होने से वही आत्मा ईश्वर है। द्वादशांग वाणी के प्रकाशने से वही आत्मा ब्रह्मा है। और कृत कृत्य पने से वही आत्मा सिद्ध है। ऐसे गुण भेद कर आत्मा के अनेक नाम हैं।

( १०५ दोहा )

इन लक्षण युक्तात्मा, निकल करे तन वास।
वही शुद्ध परमात्मा, दूजा भेद न तास ॥

ऊपर कहे हुए लक्षणों से युक्त शरीर रहित आत्मा है सो शरीर में रहता है। अर्थात् आत्मा जड नहीं है पर जड़ में वास करता है। फिर वही कर्म मल रहित शुद्ध परमात्मा होता है। इसमें कुछ भेद दूसरा नहीं है।

( १०६ दोहा )

जो सीजे जो सीजते, जो सीजेंगे और।
सो सब सम्यग्दृष्टि हो, भ्रांति रहित कर गौर॥

हे आत्मन् ! जो आत्मा मुक्त हुए हैं वा होते हैं तथा होवेंगे सो सब सम्यग्दर्शन ग्रहण कर मुक्त हुए हैं। ऐसा भ्रांति रहित ध्यान देकर जानो।

( १०७ दोहा )

भव भटकन से भीत हो, योगींद्र सु मुनिराज।
प्राकृत दोहों में रचो, निज सम्बोधन काज॥

संसार में बारंबार जन्म मरण के दुःखों से डर कर योगींद्र देव मुनि ने अपने सम्बोधन व अभ्यास के लिए प्राकृत दोहों में रचना की।

( १०८ दोहा )

तिन गुरु चरण सरोज नमि, भाषा दोहा कीन।
लघुमति नाथूराम ने, लखि तिस आशय पीन॥

तिन योगींद्र देव गुरु के चरण कमलों को नमस्कार कर भाषा दोहों में किया। अल्पबुद्धि मुन्शी नाथूराम ने

तिस ग्रन्थ का कठिन आशय जान भाषा दोहों में टीका सहित रचना किया।

( १०६. दोहा )

चैत्र शुक्ल ग्यारसि सुभग, भृगुवासर शुभ चीन।
छप्पनयुत उनईश शत, ग्रन्थ समाप्ता कीन॥

चैत्र सुदी ११ शुक्रवार सम्वत् १९५६ को ग्रन्थ समाप्त किया।

इति श्री योगीन्द्रदेव कृत योगसार प्राकृत दोहा ग्रन्थ का
उल्था स्वानुभवदर्पण श्री नाथूरामजी लमेचू कृत सम्पूर्ण हुआ॥



# मिथ्यात निषेध

या

## सच्ची श्रद्धा

[ र० श्री० जैन धर्म भूषण ब्र० शीतलप्रसादजी ]

---

मानव जन्म बहुत ही कीमती है। बहुत बड़े पुण्य के उदय से यह जन्म मिलता है। ऐसे जन्म को पाकर वही मनुष्य अपना कर्तव्य पालता है जो अपने जीवन को धर्मानुकूल बिताने का उद्यम करता है। धर्म से ही जीव का भला होता है। अधर्म से जीव का बुरा होता है। धर्म के फल से ही तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रति नारायण, बलभद्र, कामदेव, महामण्डलेश्वर, मंडलेश्वर, महाराजा, राजा, नगरसेठ आदि के उच्चपद प्राप्त होते हैं। धर्म के ही फल से धन होता है, सुन्दर शरीर होता है, शरीर में बल होता है, अपना अधिकार होता है, जगत में यश

होता है। धर्म के ही फल से सुन्दर मकान, बढ़िया कपड़े, सोफियाने गहने, सोने चांदी के बर्तन आदि मिलते हैं। धर्म ही से शरीर निरोग रहता है, दीर्घ आयु होती है, इष्ट पदार्थों के भोग खान पानादि प्राप्त होते हैं। धर्म ही के फल से पुरुषों को मन मोहने वाली स्त्री व स्त्रियों को मन मोहने वाले पति का लाभ होता है। धर्म ही के प्रताप से आज्ञाकारी पुत्र-पुत्री, नौकर-चाकर मिलते हैं। धर्म ही के कारण जीवन भर दारिद्र नहीं सताता है, जिन्दगी के दिन साता से बीतते हैं। धर्म ही के फल से श्रेष्ठ कुल में जन्मता है, जहां बिना अधिक महनत के धन मिल जाता है और अपना समय धर्म साधन के लिये निकाला जा सकता है। धर्म ही के प्रताप से म्लेच्छखंड में न जन्म करके आर्य खंड में जन्म होता है। धर्म ही की महिमा से सच्चे साधु संतों का, सच्चे धर्म का, सच्चे देव का समागम मिलता है। धर्म ही के फल से इन्द्र, धरणेन्द्र, लोकपाल, लौकांतिक देव, अहमिन्द्र, सुन्दर देव, देवी का शरीर मिलता है। धर्म का ही यह प्रताप है जो देव गति मिलती है जिसमें शरीर में रोग नहीं होते, न मनुष्यों के समान भोजन पान करना पड़ता है। उनको जब भूख लगती है तब उनके कंठ में अमृत झर जाता है। धर्म ही के फल से देव देवियों की आयु बहुत बड़ी होती है, वे इच्छित भोग भोगते हैं। धर्म

ही के प्रताप से यह जीव भोगभूमि मे जाता है जहां युगलिये पैदा होते हैं, कल्प वृक्षों से मनमाने भोग मिल जाते हैं, वहां दीर्घ काल तक संतोष से जीवन बीतता है। कहा है— धर्मः सुखस्य हेतुः अर्थात् सुख का उपाय धर्म है। जगत् में जितने प्राणी कुछ सुखी देखने मे आते हैं सो सब धर्म का फल है।

अधर्म दुखों का मूल है। अधर्म या पाप के फल से नीच कुल में जन्मता है, गर्भ में आते ही मर जाता है या थोड़ी आयु पाकर मर जाता है। बदसूरत, रोगी, धन हीन, बलहीन, अन्धा, काना, बहिरा, गूंगा, कूबड़ा, बौना, लूला, लंगड़ा, सर्व पाप के फल से होता है। पाप के फल से धन जितना चाहो मिलता नहीं, विवाह नहीं हो पाता है। यदि कदाचित् होता भी है तो स्त्री जल्दी मर जाती है। पुत्र पुत्री होते नहीं, यदि होते हैं तो मर जाते हैं, गहना कपड़ा चाहने पर भी नहीं मिलता है। पाप के फल से स्त्री का व पति का वियोग हो जाता है। पाप के कारण दुर्वचन सुनने को मिलते हैं, कोई अपनी बात नहीं पूछता है, पद पद पर अपमान सहना पड़ता है, धन नाश हो जाता है, राज छूट जाता है, कुल का नाश हो जाता है। सारा जीवन रोगी बना रहना पड़ता है, घर में पैसा होते हुए भी भोग नहीं भोगे जा सकते हैं। पाप

के फल से ही खर्च के लायक धन नहीं मिलता है, बड़ी कष्ट की नौकरी करनी पड़ती है, सरदी के मौसम में भी पहनने को कपड़ा नहीं मिलता है। पाप के फल से ही पशु गति मिलती है, पशु में एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक पांच प्रकार के जीव होते हैं।

एकेन्द्रिय जीव पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पति काय ( वृक्षादि ) में होते हैं—इन विचारों का छूने से ज्ञान होता है, छूने ही के द्वारा ये घोर दुख सहते हैं—मिट्टी को खोदते हुए, रौंदते हुए, हल चलाते हुए, पानी को कुचलते, नहाते, ढोलते, सींचते, गर्म करते हुए, आग को बुझाते हुए, दाबते हुए, हवा का धक्का देते हुए, पंखा चलाते हुए, दरख्तों को काटते हुए, तोड़ते हुए, चूटते हुए, फलादि को विनारते हुए, गर्म पानी में डालते हुए महान दुःख होता है। वे अपने दुःख को मुंह से कह भी नहीं सकते हैं। दो इन्द्री जीव लट, संख सीप आदि, तेइन्द्री जीव चीटी, खटमल, जूं आदि चौइन्द्री जीव मक्खी, मच्छर, पतंगे आदि गर्मी सर्दी से, दबने से, आग से, हवा से, वर्षा से, सबलों द्वारा खाए जाने से महान कष्ट भोगते हैं। ये सब उनके ही पाप का फल है। पंचेन्द्रिय पशुओं में ऊंट, हाथी, घोड़ा, बैल, गाय, भैंस, हिरण, भेड़, बकरी, कुत्ता, बिल्ली, सूकर,

मोर, कबूतर, मुर्गा, मछली, मच्छ, मगरमच्छ आदि जानवर बहुत कष्ट पाते हुये दिखलाई पड़ते हैं। सबल निर्बलों को सताते हैं। मानव समाज कसाई खानों में इनकी हत्या करता है, वे तड़फ २ कर मरते हैं। अधिक बोझा लादे जाने का कष्ट सहते हैं। कोड़ों की, लकड़ियों की, अंकुश की मार सहते हैं। जिनके पालने वाले नहीं होते हैं वे पेट भर खाने को बड़ी कठिनता से पाते हैं। पशुगति के घोर दुःख, पाप कर्म के ही फल हैं।

यदि नरक गति का विचार करें तो नरक में दीर्घ काल तक इस प्राणी को रह कर भूख-प्यास से तड़फते हुए छेदन-भेदन, मारन-ताड़न के जो भयानक कष्ट सहने पड़ते हैं, सो सब पाप का ही फल है।

इस जगत में सब सुख दुःख कर्मों ही का फल है। पुण्य कर्म से साता, पाप-कर्म से असाता होती है। श्री अमृत चन्द्र आचार्य समयसार कलश में कहते हैं—

सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय-
कर्मोदयान्मरणजीवित-दुःख-सौख्यम्।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य-
कुर्यात्पुमान् मरण-जीवित-दुःख सौख्यम् ॥६॥

भावार्थ—सर्व ही संसारी जीवों को अपने ही कर्मों के फल से मरना, जीना, दुःख व सुख होता है। यह बात

निश्चय है। यह मानना अज्ञान है कि कोई मानव या देव किसी का मरण, जीवन, दुःख, सुख कर डालेगा जब तक उसके कर्म का उदय न हो। विना अपने ही पुण्य के उदय के कोई सुख नहीं पा सकता। विना अपने ही पाप के उदय के कोई दुःख नहीं पा सकता है।

श्री गुणभद्राचार्य आत्मानुशासन में कहते हैं—

पापाद्दुःखं धर्मात्सुखमिति सर्वजनसुप्रसिद्धमिदम्।
तस्माद्विहाय पापं चरतु सुखार्थी सदा धर्मम् ॥८॥

भावार्थ—पाप से दुःख होता है। धर्म से सुख होता है, यह बात सब लोक में मशहूर है, सब लोगों को विदित है। इसलिये जो सुख को चाहता है, उसे सदा पाप को छोड़ कर धर्म पर चलना चाहिये। और भी कहा है।

सुखितस्य दुःखितस्य च संसारे धर्म एव तव कार्य्यः।
सुखितस्य तदभिवृद्धयै दुःखभुजस्तदुपघाताय ॥१८॥

भावार्थ—इस संसार में सुखी व दुःखी हर एक को धर्म करते रहना चाहिये। सुखी जीव का सुख बढ़ जायेगा तथा दुःखी जीव का दुःख नाश हो जायेगा।

धर्मारामतरूणां फलानि सर्वेन्द्रियार्थसौख्यानि।
संरक्ष्य तांस्ततस्तान्युच्चिनु यैस्तैं रुपायैस्त्वम् ॥१६॥

भावार्थ—हे भाई धर्म रूपी बाग के वृक्षों के फल ही

ये सब इन्द्रियों के सुख हैं इसलिये तुझे चाहिये कि अच्छे अच्छे उपायों को करके तू धर्म रूपी वन के वृक्षों की रक्षा करे।

बहुत से प्राणी ऐसा सोचते हैं कि अब तो लक्ष्मी है, भोग हैं, खूब भोग कर लेना चाहिए। धर्म को कौन पाले–पीछे देखा जायेगा। जो ऐसा सोचते हैं वे बड़े मूर्ख हैं—उनके लिये वे ही आचार्य कहते हैं—

धर्मादवाप्त–विभवो धर्मं प्रतिपाल्यभोगमनुभवतु।
बीजादवाप्त—धान्यः कृपीवलस्तस्य बीजमिव ॥२१॥

भावार्थ—हे प्राणी! यदि तुझे संसार के भोगों से वैराग्य नहीं हुआ है और तू भोग भोगना ही चाहता है तो धर्म को पालते हुये भोगों को भोग। क्योंकि वर्त्तमान में तुझे ये भोग धर्म के फल से ही प्राप्त हुए हैं। जैसे किसान बीज बोकर धान्य पाता है फिर भी बीज को बोता है और भोगता भी है–यदि अगाडी फसल के लिये बीजों को किसान न बोवे तो उसे पीछे दरिद्री होकर भूखा मरना पड़े। इसी तरह यदि तू अब धर्म नहीं करेगा तो आगे दुःख ही भोगेगा—नरक व पशु गति में जाकर जन्म जन्म कष्ट पाएगा। इसलिए चतुर नर–नारी को उचित है कि इस नर जन्म को धर्म पाल कर सफल करे और पापों को छोड़े।

यह मानव का देह काने ईख के समान अमल में भोगने योग्य नहीं है—किन्तु बोने योग्य है। जैसे काने सांठे को चूसने से रस नहीं मिलता वैसे इस नर देह को अन्ध होकर भोगों में लगाने से इन्द्रिय भोगों का भी वैसा स्वाद नहीं आता है जैसा देवों को आता है। किन्तु इस देह को धर्म साधन में लगा दिया जाय तो इससे स्वर्ग व मोक्ष का लाभ हो सकेगा। जगत में सबसे बड़ा पाप क्या है व सबसे बड़ा धर्म क्या है? यदि विचार करोगे तो मालूम होगा मिथ्यात्व के बराबर पाप नहीं है, सम्यक्त्व के समान धर्म नहीं है। जगत में जुआ खेलना, मदिरा पीना, मांस खाना, चोरी करना, शिकार खेलना, वेश्या सेवना, पर स्त्री सेवना, झूठ बोलना, ईर्षा करना, हिंसा करना, क्रोध करना, मान करना, मायाचार करना, लोभ करना, काम भोग करना, इन्द्रियों की लम्पटता से अभक्ष्य खाना, दूसरों का बुरा विचारना, गाली देना, बकवाद करना, शरीर की खोटी चेष्टा करना, हंसी करना, शोक करना, मारना, काटना, कष्ट देना, किसी को भूखा प्यासा रखना, ठग लेना, विश्वास घात करना, अधिक बोझा लादना, अंग उपंग छेदना, बन्धन में डाल देना, झूठा कागज लिखना, झूठी गवाही देना, अमानती माल को झूठ बोल कर ले लेना, चोरी का माल खरीदना, चोरी

कराना, कमती बढ़ती तौलना, नापना, सच कह कर मिलावटी माल बेचना, वेश्या नाच देखना, खोटी कथायें पढना, खोटा सिनेमा नाटक देखना, झूठा मुकदमा करना, मान खंडन करना, पर की निन्दा करना, अपनी शेखी मारना, कलह करना, कठोर वचन बोलना, धन संग्रह करके कृपणता रख कर दान में न लगाना आदि अनेक पाप हैं। परन्तु ये सब पाप मिथ्यात्व के पाप से छोटे हैं। मिथ्यात्व के समान जगत में कोई पाप नहीं है। मिथ्यात्व के ही फल से जीव निगोद जाता है। एकेन्द्रियादि असैनी पंचेन्द्रिय होता है। नर्क धरा में जाकर दुःख उठाता है—दरिद्री रोगी, अंगहीन मानव होता है। स्त्री का शरीर पाता है। महान् दुःखी कुत्ता, बिल्ली, शेर, चीता, हाथी, ऊँट, बैल, मुर्गा, भेड़, बकरी, मच्छ आदि होता है। मिथ्यात्व के ही फल से भवनवासी, व्यंतर, भूत प्रेत, ज्योतिषी आदि नीच देव होता है। मिथ्यात्व ही भव वन में अनन्त काल भ्रमण कराने वाला है। मिथ्यात्व के समान इस जीव का कोई वैरी नहीं है। श्री समन्तभद्राचार्य रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहते हैं—

न सम्यक्त्वसमं किंचित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनुभृताम् ॥३४॥

भावार्थ—तीन काल भूत, भविष्यत, वर्तमान में व तीन

जगत में सम्यक्‌दर्शन के समान कोई प्राणियों का कल्याण-कारी धर्म नहीं है। और मिथ्यात्व के समान कोई उनका बुरा करने वाला पाप नहीं है। श्री कुलभद्राचार्य सार समुचय में कहते हैं—

मिथ्यात्वं परमं बीजं संसारस्य दुरात्मनः।
तस्मात्तदेव मोक्तव्यं मोक्ष—सौख्यं जिघृक्षुणा ॥५२॥

भावार्थ—मिथ्यात्व ही इस दुःखमई संसार का बड़ा बीज है। इसलिए जो मोक्ष का सुख चाहते हैं उनको उचित है कि मिथ्यादर्शन का त्याग करे।

जगत में दया पालना, सत्य बोलना, परोपकार करना, देव सेवा, गुरु भक्ति, शास्त्र पढ़ना, संयम लेना, श्रावक व्रत पालना, साधु का चरित्र पालना, सेवा करना, सम भाव से दुःख सहना, विद्या दान देना, आहार दान देना, औषधि दान देना, अभय दान देना, देख कर चलना, पानी छान कर पीना, रात्रि भोजन न करना, उपवास करना, एकासन करना, विश्व प्रेम रखना, समता भाव से कष्ट सहना, घोर तप करना, श्री जिन मन्दिर बनवाना, श्री जिन मन्दिर का जीर्णोद्धार करना, विद्यालय स्थापित करना, औषधालय कायम करना, पशुओं को वध से बचाना, समय का सदुपयोग करना, क्षमा भाव रखना, संतोष भाव रखना, कोमल परिणाम रखना, सरलता से

व्यवहार करना, मन को पवित्र रखना, ममता का त्यागना, ब्रह्मचर्य का पालना, आदि बहुत से धर्म के अंग हैं। परन्तु सम्यग्दर्शन के समान कोई धर्म नहीं है। सम्यग्दर्शन के होने पर और धर्मों का मूल्य है अन्यथा कुछ कीमत नहीं है। श्री गुणभद्राचार्य आत्मानुशासन मे कहते हैं—

शम-बोध-वृत्त-तपसां पाषाणस्येव गौरवं पुंसः।
पूज्यं महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वेन संयुक्तम् ॥१५॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन के बिना शांतभाव, ज्ञान, चारित्र, तप आदि धर्मों का मूल्य कंकड़ पत्थर के समान है। परन्तु सम्यग्दर्शन के साथ में उनका मूल्य महामणि के समान है।

श्री कुलभद्राचार्य सार समुच्चय में कहते हैं—

वरं नरकवासोऽपि सम्यक्त्वेन समायुतः।
न तु सम्यक्त्वहीनस्य निवासो दिवि विराजते ॥३९॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन के साथ नरक में भी रहना अच्छा है। किन्तु सम्यक्त के बिना स्वर्ग में भी रहना शोभता नहीं है।

और भी कहते हैं—

सम्यक्त्वं परमं रत्नं शंकादिमलवर्जितम्।
संसार-दुःख-दारिद्र्यं नाशयेत्सुविनिश्चितम् ॥४०॥

भावार्थ—शंका आदि दोषों से रहित सम्यग्दर्शन परम

रत्न है। क्योंकि यही सम्यक्त्व संसार का दुःख, दारिद्र, नाश कर देता है। और भी कहते हैं—

सम्यक्त्वेन हि युक्तस्य ध्रुवं निर्वाणसंगमः।
मिथ्यादृशोऽस्य जीवस्य संसारे भ्रमणं सदा ॥४१॥

भावार्थ—जो सम्यग्दर्शन सहित है वह अवश्य निर्वाण को पाएगा। जो मिथ्यात्व सहित है वह अवश्य संसार में भ्रमण करेगा।

देखो श्री महावीर जी भगवान का जीव श्री ऋषभदेव का पोता मारीच था। इसने मिथ्यात्व नहीं छोड़ा, इसलिए वह दीर्घकाल तक संसार में रुला, करोड़ों जन्म वृक्ष, मत्स्य मार्जार, कुत्ते आदि के पाए—जब तक श्री अजित आदि पार्श्वनाथ पर्यन्त २२ तीर्थङ्कर हुए तब तक सागरों वर्षों तक मारीच के जीव को संसार में कष्ट सहना पड़ा। जब इसी जीव को सम्यग्दर्शन का लाभ हो गया, तब यही जीव १० वें जन्म में श्रीमहावीर भगवान होकर मोक्ष चला गया।

प्यारे भाइयो और बहनो! इसलिए यदि आप अपना भला करना चाहें, यदि आपको अपने आत्मा का कल्याण करना है, यदि आप संसार के भयभीत कष्टों से अपने को बचाना चाहते हैं, यदि आप सुख शांति पाना चाहते हो, यदि आप संसार में रहते हुए सुख की सामग्री चाहते हो और दुःख सामग्री नहीं चाहते हो तो आपका यह

परम पवित्र कर्तव्य है कि आप मिथ्यात्व रूपी विष को उगालकर फेंकदें और सम्यग्दर्शन रूपी अमृत को पीलें।

अब हम आपको यह बताना चाहते हैं कि मिथ्यात्व क्या है और सम्यक्त्व क्या है ?

पहले मिथ्यात्व रूपी शत्रु को समझ लीजिए जिसके वश में आप पड़े हैं। फिर आपको स्वयं सम्यग्दर्शन का पता लग जायगा।

मिथ्यात्व दो तरह का है। एक अग्रहीत, दूसरा ग्रहीत।

अग्रहीत मिथ्यात्व वह है जो अनादि काल से अज्ञानी जीव के साथ चलता चला आया है। जैसे छहढाला में प० दौलतरामजी ने कहा है—

मोह महामद पियो अनादि। भूल आपको भरमत वादि॥

इस जीव ने अनादि काल से मोह रूपी महान मदिरा का पान कर लिया है। इसलिये अपने को भूलकर अपने को और का और मान रक्खा है। यह अज्ञानी प्राणी जिस शरीर में जाता है उस ही को अपना मान लेता है। अर्थात् उस ही रूप अपने को मान लेता है तथा शरीर के सम्बन्धियों को अपना हितू व उसके बिगाड़ करने वालों को अपना शत्रु मान लेता है। नरक में जाकर अपने को नारकी, देवगति में जाकर अपने को देव, पशु गति में में जाकर अपने को पशु, कुत्ता, बिल्ली, बैल, बकरा, हाथी,

ऊँट, घोड़ा, शेर, हिरण, मक्खी, चींटी, लट, शंख, वृक्षादि मनुष्य गति में गया तो अपने को मनुष्य सेठ साहूकार, जमीदार, सिपाही, सेवक, राजा, कृषक आदि मान बैठता है—और जिनका सम्बन्ध पाता है। उनको भी अपना मान लेता है, यह मेरी स्त्री है। ये मेरे पुत्र हैं, यह मेरी बहिन है, यह मेरे भाई है, यह मेरे चाचा हैं, यह मेरे मामा हैं, यह मेरा कपड़ा है, यह मेरा बर्तन है, यह मेरा मकान है, यह मेरा गहना है, यह मेरा धन है, यह मेरा देश है, यह मेरा राज्य है, इस तरह अहंकार और ममकार में ऐसा फंस जाता है कि रात दिन इस भ्रम में उलझ कर उनके काम किया करता है। आत्मा के हित को भी भूल जाता है—हिंसा, झूंठ, चोरी, विश्वासघात आदि करके भी कुटुम्ब के मोह में धन कमाता है, भोगों में लिप्त हो जाता है। जब कोई कुटम्बी मरता वह धनादि का वियोग होता है तब हाय २ करके रोता है, छाती कूटता है। जब रोग होता है तब बहुत दुःख मानता है, जब मरने लगता है तब बहुत शोक करता है कि हाय सब नाता टूटा जाता है, क्या करूं? यदि परिवार की या धन की वृद्धि होती है तो फूला नहीं समाता है, मद में भर जाता है। अपने को ऊंचा और दूसरों को नीचा देखता है, बड़ी भारी आकुलता व जंजाल में फंस जाता है। रात दिन शरीर को

कुटुम्ब की, धन की चिन्ता करते करते परेशान रहता है। आत्मा का हित बिलकुल नहीं याद करता है। यही मिथ्यात्व है, गफलत है, मोह है। इसे हर एक प्राप्त किए हुए शरीर में यह प्राणी कर लेता है और यह मानना सब झूंठा है। यह बात विचारने से साफ २ झलकती है। जिस शरीर को हम अपना मानते हैं। वह छूट जाता है। पुत्र, पुत्री, स्त्री, मित्र आदि आदि सब मतलब के गरजी हैं—अगर उनका मतलब नहीं निकले तब जरासी देर में शत्रु बन जाते हैं। नीतिकार ने कहा भी हैः—

न कोपि कस्यचित् मित्रं न-कोपि कस्यचित् रिपुः।
व्यवहारेण जायंते मित्राणि रिपवस्तथा ॥

भावार्थ—न कोई किसी का मित्र है, न कोई किसी का शत्रु है, व्यवहार से ही–मतलब से ही–कोई मित्र व कोई शत्रु बन जाते हैं।

जैसा आप नहीं है वैसा अपने को मानना, जो अपना असल में नहीं है उसको अपना मानना–यही अनादि काल का चला आया हुआ अग्रहीत मिथ्यात्व है—यही मोह जाल है। इसी में संसारी प्राणी फँस कर अपने आत्मा के स्वरूप को भूल गया है। यही मदिरा है, जिस के नशे में चूर होकर यह न मानने योग्य को अपना मानता है. न करने योग्य कार्य करता है, न बोलने योग्य बोलता

है, अपनी इस भूल से आप ही दुःख उठाता है। अपने इस जन्म में भी कष्ट भोगता है। मर कर कुगति में जाकर भी दुःख उठाता है। श्री रामसेन मुनि तत्त्वानुशासन में कहते हैं—

ये कर्मकृता भावाः परमार्थनयेन चात्मनो भिन्नाः।
तत्रात्माभिनिवेशोऽहंकारोऽहं यथा नृपतिः ॥१५॥

भावार्थ—जो हमारे भाव कर्मों के उदय से होते हैं वे निश्चियनय से हमारी आत्मा के स्वभाव से भिन्न हैं। उनको ही आत्मा मान लेने का जो मिथ्या अभिप्राय है उसे अहंकार कहते हैं, जैसे मैं राजा हूं।

शश्वदनात्मीयेषु स्वतनुप्रमुखेषु कर्मजनितेषु।
आत्मीयाभिनिवेशो ममकारो मम यथा देहः ॥१४॥

भावार्थ—जो सदा ही अपने आत्मा से भिन्न शरीर कुटुम्बादि पदार्थ कर्म के निमित्त से प्राप्त हुए हैं, उनमें अपनेपने का मिथ्या अभिप्राय सो ममकार है। जैसे यह देह मेरी है।

मिथ्याज्ञानान्वितान्मोहान्ममाहंकारसंभवः।
इमकाभ्यां तु जीवस्य रागो द्वेषस्तु जायते ॥१६॥

भावार्थ—मिथ्या ज्ञान सहित मिथ्यात्व से ही अहंकार ममकार का जन्म होता है। इन ही के कारण जीव के भीतर राग द्वेष पैदा हो जाता है।

तेभ्यः कर्माणि बध्यन्ते ततः सुगति दुर्गती ।
तत्र कायाः प्रजायंते सहजानीन्द्रियाणि च ॥१८॥

भावार्थ—उन हिंसादि पापों के कारण कर्म बंध हो जाते हैं । कर्मों के फल से यह जीव देव या मनुष्य की सुगति में या नरक, पशु. की दुर्गति में चला जाता है । वहां फिर शरीर और उसके साथ इन्द्रियें पैदा होती हैं ।

तदर्थानिन्द्रियैर्गृह्णन् मुह्यति द्वेष्टि रज्यते ।
ततो बंधो भ्रमन्त्येव मोह-व्यूह गतः पुमान् ॥१९॥

भावार्थ—उन इन्द्रियों से उनके अच्छे बुरे विषय रूप पदार्थों को ग्रहण करता है, उनमें फिर मोहित होकर भ्रम में पड़कर उनको अपना मान बैठता है इससे फिर

राग द्वेष करता है। तब फिर कर्म बन्ध होता है। इस तरह यह जीव मोह रूपी दुष्ट राजा की सेना के बीच में पड़ा हुआ कष्ट पा रहा है।

इस अग्रहीत मिथ्यात्व को वमन करना उचित है। मिथ्या अहंकार ममकार त्यागना उचित है, अपने आत्मा को सिद्ध परमात्मा के समान पूर्ण ज्ञाता, दृष्टा, वीतराग, आनन्द मई, अमूर्तीक मानना उचित है।

श्री पूज्यपाद स्वामी इष्टोपदेश में कहते हैं—

स्वसंवेदन-सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यंत-सौख्यवानात्मा लोकालोक-विलोकनः ॥२१॥

भावार्थ—यह आत्मा स्वभाव से अविनाशी है, अत्यंत आनन्दमय है, लोक अलोक को देखने जानने वाला है। अपने अनुभव द्वारा झलकता है तथा यह आत्म-देव अपने शरीर में ही शरीर भर में व्यापक है।

श्री महावीर भगवान, गौतम स्वामी, जम्बू स्वामी, श्री रामचन्द्र, श्रीहनुमान, श्रीसुग्रीव, श्रीकुम्भकर्ण, श्रीइन्द्र-जीत आदि महान् पुरुषों ने मोक्ष पाई है। उनका आत्मा परमात्मा हो गया—तब जो कुछ उन परमात्माओं में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त आदि शुद्ध गुण प्रगट हैं, वे सब कहीं से नए नहीं आए हैं किन्तु संसारी अवस्था में भी वे सब

थे। मात्र पाप पुण्य कर्मों से ढके हुए थे—कर्मों के नाश से प्रगट हो गये। बस हम सब को अग्रहीत मिथ्यात्व को त्याग कर यह सच्चा श्रद्धान रखना चाहिये कि हमारे आत्मा का स्वभाव परमात्मा के समान शुद्ध है। न हम स्वभाव से रागी हैं, न द्वेषी हैं, न क्रोधी हैं, न मानी हैं, न मायावी हैं, न लोभी हैं, न भयवान हैं, न कामी हैं, न मनुष्य हैं, न देव हैं, न पशु हैं, न आर्य हैं, न म्लेच्छ हैं, न विद्याधर हैं, न भू म गोचरी हैं, न राजा हैं, न प्रजा हैं, न स्वामी हैं, न सेवक हैं, न ब्राह्मण हैं, न क्षत्रिय हैं, न वैश्य हैं, न शूद्र हैं, न स्त्री हैं, न पुरुष हैं, न रोगी हैं, न निरोगी हैं, न बालक हैं, न युवा हैं, न वृद्ध हैं, न हम जन्मते हैं, न मरते हैं, न हम काले हैं, न गोरे हैं, न मीठे हैं, न खट्टे हैं, न हम सुगंधित हैं, न दुर्गन्धमय हैं, न हम ठंडे हैं, न गर्म हैं, न हम चिकने हैं, न रूखे हैं, न हम हलके हैं, न भारी हैं, न हम कोमल हैं, न कठोर हैं, हम तो मात्र एक शुद्ध ज्ञाता, दृष्टा, वीतराग आनन्दमय पदार्थ हैं—बस ऐसा सच्चा श्रद्धान होने से कर्म से पैदा हुए भावों में अहंकार मिट जाता है और अपने ही असली स्वभाव में ही अहंपना व अपना पना भासने लगता है।

इसी तरह हमें विश्वास करना चाहिये कि हमारा सबंध

न शरीर से है, न माता से है, न पिता से है, न स्त्री से है, न पुत्र से है, न पुत्री से है, न बहन से है, न भाई से है, न किसी मित्र से है, न धन से है, न वस्त्र से है, न वर्तन से है, न हाथी, घोड़े, बैल, गाय, भैंसादि से है, न राज्य से है, न हाट, दुकान, बाजार व नगर से है। हमारा अपना सम्बन्ध तो मात्र अपने आत्मीक गुणों से है। ज्ञान से, दर्शन से, अनन्तवीर्य से, सम्यग्दर्शन से, वीतरागता से, आनन्द से, अमूर्तीकपने से हमारा सम्बन्ध है जो सम्बन्ध कभी छूट नहीं सकता है। ऐसा सच्चा यकीन लाने से 'मेरा शरीरादि है–'यह ममकार मिट जाता है और अपने ही असली गुणों की सम्पत्ति से ममकार हो जाता है।

अब गृहीत मिथ्यात्व को समझ कर वमन करना चाहिये। यह वह मिथ्या प्रवृत्ति है जो इसी देह में अपने कुटुम्ब की, व भुलावा देने वाले सम्बन्धियों की, व कुमित्रों की, व कुगुरुओं की संगति से अपने में पैदा हो जाती है। मिथ्या श्रद्धा अपने में जम जाती है। जो हमें ऐसे भ्रम में डाल देती है कि हम फिर गृहीत मिथ्यात्व को कभी छोड़ ही नहीं सकते।

इसीलिये पं० दौलतरामजी ने छहढाला में कहा है–

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव। पोखे चिर दर्शन मोह एव।

ताकूं गृहीत मिथ्यात्व जान।

भावार्थ—जो मिथ्यादेव, मिथ्यागुरु व मिथ्या धर्म की सेवा करता है। यह भीतरी मिथ्या बुद्धि को मजबूत कर देता है। यही गृहीत मिथ्यात्व है।

इसके दूर करने का उपाय यह है कि हम सच्चे देव, सच्चे गुरु व सच्चे धर्म को समझलें और उनके सिवाय अन्य की कभी भक्ति न करें।

हम सब संसारी जीवों के भीतर दो मुख्य दोष हैं। एक अज्ञान दूसरे क्रोधादि कषाय। जिस किसी परमात्मा मे न अज्ञान हो न क्रोधादि कषाय हो अर्थात् सर्वज्ञ वीतराग हो, वही पूज्यदेव हो सकता है। यह लक्षण जैनियों द्वारा माने गये सर्व अर्हंत व सिद्धों में है। ये सब सर्वज्ञ वीतराग हैं। श्रीऋषभदेव आदि महावीर पर्यंत चौबीस तीर्थङ्कर पहले अरहंत हुए, जब शरीर सहित थे व उपदेश करते थे। फिर वे ही शरीर से मुक्त हो सिद्ध हो गए, इत्यादि जो जो अरहंत व सिद्ध हो गये हैं वे सब सर्वज्ञ और वीतराग हैं। हमारा प्रयोजन यह है कि हमारा अज्ञान व कषाय मिटे। हम जब ऐसे आदर्श देव का भजन, पूजन, मनन, ध्यान करेंगे तब हमारा अज्ञान व कषाय अवश्य घटेगा, हमारा भाव निर्मल होगा तथा इस आदर्श को देखकर व जानकर हम उसी आदर्श के समान होने का पुरुषार्थ कर

सकेंगे। बडे पहलवान का आदर्श शिष्य को पहलवान बनाता है। बड़े गवैय्ये का आदर्श शिष्य को गवैय्या बनाता है। बडे व्यापारी का आदर्श शिष्य को व्यापारी बनाता है। बड़े जौहरी का आदर्श शिष्य को जौहरी बनाता है। इसी तरह सर्वज्ञ वीतराग का आदर्श आत्मा को ज्ञानी व वीत-रागी बनाता है।

जैसे चित्रकार किसी नमूने के चित्र को सामने रखता है तब उसे देख देख कर जब तक वैसा ही चित्र न खिंच जावे तब तक उस चित्र का देखना बन्द नहीं करता है। उसी तरह उस प्राणी को जो संसार से छूटकर परमात्मा होना चाहता है, जब तक परमात्मा पद के निकट न पहुँचे तब तक यही आदर्श परमात्मा के सामने रखना चाहिए। किसी भी अज्ञानी व रागी द्वेपी देव को न पूजकर सर्वज्ञ वीतराग देव को ही भजना चाहिये।

श्री पद्मनंदि मुनि धम्म रसयाण में कहते हैं—

ए ए सव्वे दोसा जस्स ण विज्जंति छुह निसाईया।
सो होइ परमदेज्जो णिस्सन्देहेण घेतव्वो ॥१२०॥

भावार्थ—जिसमें क्षुधा, तृपा, भय, राग, द्वेप, मोह, चिन्ता, रोग, जन्म, जरा, मरण, निद्रा, खेद, पसीना, शोक, रति, मद, आश्चर्य ये १८ दोप नहीं हो उसी को सच्चा देव संदेह रहित मानना चाहिये।

जिय कोहो जिय माणो जिय माया लोह मोह जिय भयओ।
जिय मच्छरो य जह्मा तम्हा णामं जिणो उत्तो ॥१३५॥

भावार्थ—उस देव को जिन या जिनेन्द्र इसीलिये कहते हैं कि उसने क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि दोषों को जीत लिया है।

लोयालोयविदण्हु तह्मा णामं जिणस्स विण्हुत्ति।
जह्मा सीयलवयणो तह्मा सो बुच्चए चंदो ॥१२५॥

भावार्थ—वह परमात्मा देव लोक व अलोक को जानने वाले हैं। इसलिये उस जिनेन्द्र को विष्णु भी कहते हैं। उस अरहंत के वचन शान्ति दायक होते हैं। इसलिये उसको चन्द्रमा भी कहते हैं। वही जिन चन्द्र पूजने योग्य है।

इसी तरह धर्म उसे ही मानना चाहिये जो अज्ञान और कषाय के त्याग का मार्ग बताता हो, जो कर्मों को काट के उत्तम सुख को प्रदान करे। जैसा पंडित दौलतराम जी ने छहढाला में कहा है—

दोहा—तीन लोक में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिव स्वरूप शिवकार, नमहु त्रियोग सम्हार के॥

भावार्थ—तीन लोक में सार एक वीतराग विज्ञानता है। यही धर्म आनन्दकारक है व मोक्षदायक है। इसे मैं मन वचन काय से नमस्कार करता हूँ। राग द्वेष छोड़ के

अपने आत्मा को परमात्मा रूप मानके शुद्ध आत्मा का श्रद्धान, ज्ञान व उसी का चारित्र अर्थात् शुद्ध आत्म-ध्यान ही धर्म है। यही जैन धर्म है। इसी उपाय से परमानन्द होता है, पाप छूटता है, आत्मा शुद्ध होती है। बड़े २ तीर्थङ्कर चक्रवर्ती आदि इसी धर्म से शुद्ध हुए हैं।

इसके विरुद्ध वह सब कुधर्म है, जिससे क्रोधादि कषाय या रागद्वेष की बढ़वारी हो व जो आत्मज्ञान से विमुख हो। रागी द्वेषी देव की पूजा भक्ति कुधर्म है; क्योंकि रागद्वेष को बढाने वाली है। किसी को सताना कुधर्म है; क्योंकि यह द्वेष बिना होता नहीं।

इसी तरह गुरु वही है जो रात दिन अज्ञान व कषाय मेटने का उद्यम करता हो। ऐसा साधु जो धन-धान्य, मकान, भूमि आदि परिग्रह का त्यागी होकर निरन्तर आत्मा का ध्यान करे, समता भाव सहित हो, गाली सुन कर मनमें क्रोध न लावे, सोही सच्चा गुरु है। श्री समन्त भद्राचार्य रत्नकरंड श्रावकाचार में कहते हैं—

विषयाशा-वशातीतो निरारंभोऽपरिग्रहः।
ज्ञान-ध्यान-तपो रक्तस्तपस्वी सः प्रशस्यते ॥१०॥

भावार्थ—जो पांचों इन्द्रियों की आशा के वश में न हो, आरम्भ व परिग्रह रहित हो, ज्ञान ध्यान तप में लीन हो, वही तपस्वी गुरु होता है।

परिग्रहधारी संसार की वासनाओं में लीन साधु को कभी गुरु न मानना चाहिये। वे कुगुरु पत्थर की नाव के समान हैं, आप भी डूबेंगे व दूसरों को भी डुबायेंगे।

ऐसा जान कर हे भाई व बहनों! गृहीत मिथ्यात्व को छोड़ो, कुदेव, कुगुरु, कुधर्म की श्रद्धा छोड़ कर सच्चे देव, गुरु व धर्म पर श्रद्धान लाओ। इसी भक्ति से अनादि काल का चला आया हुआ मिथ्यात्व कट सकेगा और तुम संसार में दुःखी न रहोगे। बहुत से भाई संसारी प्रयोजन के लिये देव-मूढता, पाखण्ड-मूढ़ता, व लोक-मूढ़ता में फंस जाते हैं और मिथ्यात्व का सेवन करने लग जाते हैं। वे समझते हैं कि रागी द्वेषी देवी देवता भी हमारा संकट टाल सकते हैं। परन्तु यह उनकी समझ ठीक नहीं है। कोई देवी देवता किसी को भला या बुरा विना अपने पुण्य या पाप के नहीं कर सकता है। यदि कोई देवी-देवता धन देते हों तो सब ही धनवान हो जावें, यदि पुत्र देते हों तो सब ही भक्त पुत्रवान हो जावें, यदि रोग दूर करते हों तो सब ही लोग निरोगी हो जावें। परन्तु देखने में आता है कि बहुत से देवी देवताओं के भक्त अपना मतलब नहीं निकाल सकते हैं। रोगी होते हुए मर जाते हैं, धन चला जाता है, कुटुम्ब वियोग हो जाता है। सर्व जीव अपने पुण्य के फल से सुखी व पाप

के फल से दुःखी होते हैं। जगत् में अनेक रागी द्वेषी देवों की मान्यता पड़ जाने का कारण देवमूढता है। लौकिक प्रयोजन साधने को बहुत से देवों की स्थापना कर दी जाती है कि लोग पूजेंगे। इसलिए धन व फल व मिष्टान्न जो वे चढ़ायेंगे सो मिल जावेंगे। लोगों की श्रद्धा जमने का कारण एक भ्रम है। वह यह है कि जब १०० आदमी किसी देव से यह मान्यता करके कह गये कि हमारा काम सिद्ध होगा तो हम इतने रुपयों का प्रसाद चढ़ायेंगे। सब ही पापी होते नहीं, दो चारों का काम हो गया। हुआ तो अपने पुण्योदय से बाहरी उपाय से; परन्तु वे मान लेते हैं कि यह करामात अमुक देव देवी की है। वे इस झूठी मान्यता का ढिंढोरा पीटते हैं। जिससे धीरे २ हजारों भक्त होते चले जाते हैं।

इस मूढ़ता फैलने का एक दृष्टांत यह है कि एक दफे एक ब्राह्मण बहुत से फूल लिए हुये गांव को जा रहा था। साथ में लड़का छोटा था, उसको मल की हाजत हुई। पिता ने सड़क के किनारे बिठा दिया। बाद में उस मल पर फूल डाल दिये कि किसी को बुरा न लगे। पीछे जो लोग आए उन्होंने समझा कि यहां फूल चढ़े हैं, कोई देवता होगा। धीरे २ फूलों का ढेर लग गया। लाखों ने मान्यता माननी शुरू कर दी। किसी की मान्यता उनके

पुण्य उदय से पूरी हुई। मान यह लिया गया कि उस फ़ूल देवता ने काम कर दिया। इस तरह उस मिष्टा की फ़ूल देवता के नाम से मान्यता फैल गई। एक दफे एक बुद्धिमान ने विचारा कि इसके नीचे देखना चाहिये क्या है? जो देखता है तो मल को पाता है। आप भी लज्जित होता है व चढ़ाने वाले भी इस बात को जान कर लज्जित हो जाते हैं।

यदि हमें गृहस्थी में रोग, शोक, वियोग का कष्ट हो तो हमें उस पाप के नाश करने के लिए यत्न करना चाहिये। वह यत्न ये हैं:—सच्चे देव धर्म गुरु की सेवा करके वीतराग भाव को बढ़ाना। सच्चे धर्म सेवन से पाप कट जाता है। जो भारी हो तो नहीं भी कटता है। भारी पाप को तो भोगना पड़ता है, वह कटता नहीं, शेष मध्यम व जघन्य पाप कट सकता है। इसलिये हम अपने गृहस्थी के संकटों को हटाने के लिए भी पाप के दूर करने का ही उपाय करना चाहिये। वह सच्चे देव धर्म गुरु का सेवन है, णमोकार मन्त्र का जाप है, आत्म-ध्यान है, व्रत उपवास नियमादि हैं।

जैसे किसी को रोग हो तो उसके दूर करने लिए हम को उचित उपाय ही करना ठीक है। हम शुद्ध जड़ी बूटी आदि की दवाई ही देंगे; मांस, शराब को कभी नहीं

खिलायें व पिलायेंगे। उसी तरह संकटों के दूर करने के लिए हमें बाहरी पुरुषार्थ करते हुए भीतर पाप शमन के लिए सच्चा धर्म सेवना चाहिए। राग द्वेष से पाप कर्म बंधता है, वीतरागता सहित धर्म की भक्ति से पाप कर्म कट जाता है। मिथ्या धर्म के सेवन से व रागी द्वेषी देवों की भक्ति से तो उलटा पाप बंध जायेगा, छूटेगा नहीं। हमें तीन मूढताओं से बचना चाहिये। श्री रत्नकरंड श्रावकाचार में कहा है—

देव मूढ़ता—

वरोपलिप्सयाशावान् राग-द्वेष-मलीमसाः।<br>
देवता यदुपासीत देवता मूढ़मुच्यते ॥२३॥

भावार्थ—किसी वस्तु के पाने की इच्छा करके रागी द्वेषी देवताओं को पूजना देवमूढ़ता कही जाती है।

अज्ञानी लोग राग द्वेषी देवी देवताओं की भक्तिपूजा अपनी लौकिक मान्यता को लेकर करते हैं। कोई २ बरगद, पीपल को भी देवता मानकर पूजने लगते हैं। कोई गौ, घोड़ा आदि को पूजते हैं। कोई मुसलमानों के ताजियों को पूजते हैं। शीरनी चढ़ाते हैं। इत्यादि।

जो अपना सच्चा हित करना चाहें उन्हें भूल कर भी रागी द्वेषी की भक्ति नहीं करनी चाहिए। विवाह शादी में दुकान व मकान के मुहूर्त में व और भी किसी मांगलिक

काम में मंगल के लिए, पाप काटने के लिए, पुण्य होने के लिए श्री अरिहन्त सिद्ध साधु व जिन धर्म का ही पूजन करना चाहिए। यही मङ्गल स्वरूप हैं। कहा है—अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

गुरु मूढ़ता—

सग्रन्थारम्भ हिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम्।
पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेय पाखण्डिमोहनम्। २४॥

भावार्थ—परिग्रह आरम्भ व हिंसा में प्रवर्तने वाले संसार के जाल में फंसे हुए साधुओं की पूजा करना गुरु मूढ़ता है।

जगत में बहुत से महन्त गद्दीधर ऐसे बन बैठते हैं जो तरह २ का लोभ बता कर खूब पैसा भक्तों से लेते हैं व आप विषय भोगों में खोते हैं। कोई २ किसी मन्त्रादि के प्रभाव से कोई लौकिक चमत्कार बताकर भक्तों को भुलावे में डाल देते हैं। मूढ़ स्त्री पुरुष उनकी भक्ति करके खूब ठगे जाते हैं। ज्ञानी को ऐसे गुरुओं से बचना चाहिए।

लोक मूढ़ता—

आपगा-सागर-स्नान-मुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढ निगद्यते ॥२२॥

भावार्थ—लोगों के कहने से देखादेखी नदी व सागर

के स्नान में धर्म मानना, पत्थरों के ढेर करने में, पर्वत से गिरने में, अग्नि से जलने में धर्म मानना सब लोकमूढ़ता है। मूढ़ता के वश होकर बहुत-सी लोक-मूढ़तायें की जाती हैं। जैसे दिवाली के दिनों में दीवाल पर होई बनाकर पूजना, रुपयों की थैली को पूजना, हाथी मुख गणेश व लक्ष्मी देवी को पूजना, दशहरे में गोबर के पुतले को पूजना, सलोने में दीवालों में चित्र बनाकर पूजना, विवाह सादी में चाक कुत्ता पूजना, दुकान की देहली को पूजना, कलम दवात को पूजना, तलवार को पूजना, कब्र पर चद्दर चढाना, किसी के मरण होने पर उसके निमित्त गऊ दान करना, पिंड दान करना, मरने वाले को पहुँचेगा, इस भाव से श्राद्ध करना ये सब लोकमूढता है।

जिस प्रकार के पूजनादि से व्यर्थ पैसा बरबाद हो, महनत खर्च हो, पाप का बन्ध हो और लाभ कुछ न हो उस सबको मूढता कहते हैं। देवगुरु व लोक मूढ़ता ऐसा भयंकर अन्धेरा है कि उसमें पड़कर जगत के प्राणी मिथ्यात्व का सेवन करके अपना घोर बुरा करते हैं। अपने संसार को बढ़ा लेते हैं। उन्हें कभी सम्यग्दर्शन का लाभ नहीं हो सकता। दुनियां में मिथ्यात्व का बड़ा भारी प्रचार है। लोग सुख पाने के लिए मूढता से देवी देवताओं के नाम पर पशु बलि करते हैं। यह सब मूढ़ता है। क्या

कोई ईश्वर या देवी देवता पशुओं के घात से प्रसन्न हो सकता है ? क्या वह पशुओं का भी मालिक नहीं है।

यदि आप अपना कल्याण करना चाहें तो सब तरह के मिथ्या पूजन पाठ को छोड़दें—न करवा चौथ का व्रत करें, न चन्द्रमा को देखकर रात्रि को खावें। दिन में भूखे रहकर रात्रि को खाना धर्म नहीं हो सकता है।

प्यारे भाई व बहनो ! जैन धर्म को जानो, पहचानो, देखो तो पता चलेगा कि वीतराग सर्वज्ञ देव, निर्ग्रन्थ गुरु व अहिंसामयी वीतराग धर्म ही पूजन भजन करने योग्य है। रागी द्वेषी देव गुरु धर्म की भक्ति गृहीत मिथ्यात्व है। जो अंतरंग अगृहीत मिथ्यात्व को दृढ़ करने वाले हैं। वृथा ही भ्रम में पड़कर मिथ्यात्व को सेवन कर मानव जन्म को निरर्थक न खोना चाहिये।

सम्यग्दर्शन की सेवा से ही कल्याण होगा। इसलिये सच्चे देव गुरुधर्म को समझ कर नित्य प्रति गृहस्थ के छः कर्म पालो।

(१) रोज सवेरे उठकर आत्म-ध्यान करते हुये सामायिक करो, णमोकार मंत्र का जाप दो।

(२) स्नानादि करके श्रीजिन मन्दिरजी जाकर श्रीजिनेन्द्र-देव की शान्त मुद्रा का दर्शन पूजन करो।

(३) वीतरागी गुरू हों तो उनकी भक्ति करके उपदेश ग्रहण करो।

(४) शास्त्र को शान्त चित्त हो थोड़ी देर पढ़ो, सुनो, विचारो।

(५) संयम व नियम रखो, संयम से रहो, नियम व प्रतिज्ञा लेकर इच्छाओं को रोको।

(६) नित्य प्रतिदिन दान देकर भोजन करो। धर्मात्माओं को भक्ति पूर्वक दान करो व दुःखित बुभुक्षित दीनों को दया पूर्वक दान करो। सन्ध्या के समय भी आत्म-ध्यान करो, शास्त्र पडो, परोपकार करो। अपने भावों में सम्यक्त रत्न को धारण करो। अपनी आत्मा में विश्वास करते हुए आत्मपद पाने का यत्न करो, आत्मीक आनन्द को भोगो, पुण्य पाप के फल में समता भाव रखो, राग द्वेष न करो। इस तरह दान धर्म शुद्ध पूजन पाठादि व ध्यान से बड़े पाप कट जाते हैं। प्राचीन काल में अनेक स्त्री पुरुषों ने संकट के समय जिन धर्म का ही आराधन किया था। कभी मिथ्यात्व का सेवन नहीं किया था। सीताजी वन में पटके जाने पर जिन धर्म का ही आराधन करती थी। सुलोचना सती पति पर संकट आने पर जिनेन्द्र का ही पूजन ध्यान करती थी। रेवती रानी भूल करके भी

सिवाय जिनेन्द्र के किसी को नहीं पूजती थी।

इसलिये शुद्ध मन करके मूढता को बिलकुल विदा करो। व्यवहार और निश्चय सम्यग्दर्शन को शास्त्र द्वारा जान कर इसी का आराधन करो। मिथ्यात्व विष है, सम्यक्त अमृत है। मिथ्यात्व को छोड़कर सम्यग्दर्शन का ही आराधन करो। इसीसे इस जन्म में व पर जन्म में सुख होगा।

१-७-३२ ब्र० सीतल



[ पद १. ]

सहजानंदी शुद्ध स्वरूपी, अविनाशी हूँ आत्म-स्वरूप। स्वपर प्रकाशी ज्ञान हमारा, चिदानंद घन प्राण हमारा ॥ स्वयं ज्योति सुखधाम हमारा, रहे अटल यह ध्यान हमारा। मैं देह नहीं देहवान नहीं, दोनों का जाननहार सही। अरिहंत सदा जयवंत रहो, चैतन्य सदा जय-वन्त रहो॥ गुरुदेव सदा जयवन्त रहो, जिन-धर्म सदा जयवन्त रहो। देह मरे भले मैं नहीं मरता, अजर अमर मैं आत्म–स्वरूप।

द्रव्य मात्र को अपने आप में, करने वाला रहने दो। अपना आपा आप सँभालो, परका परमें रहने दो॥ उठ चेत जरा क्या सोता है, फिर देख ज्ञान क्या होता है। क्यों परका बोझा ढोता है, क्यों जीवन अपना खोता है॥ सह-जानंदी शुद्ध स्वरूपी, अविनाशी हूँ आत्म–स्वरूप॥

[ पद २ ]

अपना सुध भूल आप, आप दुख उपायो। ज्यों शुक नभ चाल विसरि, नलिनी लटकायो॥ चेतन अविरुद्ध शुद्ध, दरश बोधमय विशुद्ध। तजि जड़–रस–फरस–रूप, पुद्गल अपनायो॥ १॥ इन्द्रिय सुख दुख में नित्त, पाग राग रुख में चित्त। दायक भव विपति वृन्द, बन्ध को बढ़ायो॥ २॥ चाह-दाह दाहै, त्यागौ न ताह चाहै। समता सुधा न गाहै, जिन निकट जो बतायो॥ ३॥ मानुष भव सुकुल पाय, जिनवर शासन सहाय। 'दौल' निज स्वभाव भज अनादि जो न ध्यायो॥ १